पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

भवदेव पाण्डेय

साहित्य अकादेमी

Pandey Bechan Sharma 'Ugra' : A monograph on the modern Hindi fiction writer by Bhavdeo Pandey, Sahitya Akademi, New Delhi (2001). Rs. 25.

प्रथम संस्करण : 2001 ई.

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

343-345, अन्ना सालई, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर मार्ग, बंगलौर 560 001

ISBN 81-260-1024-X

मूल्य : 25 रुपये

शब्द संयोजक एवं मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

अनुक्रम

1

जीवन-वृत्त

अराजक काल का एक मिथ

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म 29 दिसम्बर 1900 (पौष शुक्ल 8 सम्वत् 1957) की रात 8 बजे हुआ था। अगर ज्योतिष पर विश्वास किया जाए, तो ये काल के विषम संयोग में पैदा हुए थे। दिन था शनि, 'सूर्य' और 'छाया' का तमोगुणी पुत्र, जो अपने चारों हाथों में वाण, शूल, धनुष और भल्ल धारण किए हुए दूसरे ग्रहों को चुनौतियाँ देता रहता है। नक्षत्र था रेवती यानी बत्तीस तारों के योग से मृदंग की आकृति में अन्तरिक्ष-भ्रमण करनेवाला आखिरी नक्षत्र और साथ ही साथ मूल-प्रभावों की तरंगें उत्सर्जित करती हुई राशि थी मीन अर्थात् वह मीन, जो स्वभाव से क्रोधी होता है, जो शास्त्र विरोधी जीवन जीते हुए उत्तर-अयन का मध्य बिन्दु होता है और जो जीवन पर्यन्त पत्नी के लिए तरसता रह जाता है। बेचन के जन्म का यह 'विधृति' योग था, जो अशुभ फल देनेवाला और किसी भी यात्रा के लिए वर्जित योग माना जाता है। यही था पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की जन्म-कुण्डली का अराजक काल, जिसकी विषमताओं से जूझते हुए वे आज भी लेखकीय मिथ बने हुए हैं। जन्म की अराजक परिस्थितियों ने ही उन्हें लेखन की मुख्य धारा से अलग करके बहिष्कृत जीवन जीने के लिए विवश कर दिया।

अगर ग़ौर से देखा जाए तो 'बेचन' की कुण्डली का उक्त सन्दर्भ न कोई अन्धविश्वास साबित होगा और न ही कोई अवान्तर प्रसंग, बल्कि अराजक काल के इन्हीं संयोगों ने उनके जीवन के एक-एक क्षण को गढ़ा था, उत्तेजित किया था और उसे विद्रोही रचनाकार के रूप में संस्थापित किया था।

बक़लम खुद 'उग्र' ने बयान दिया है,

"मेरा जन्म यू. पी. के मीरजापुर ज़िले की चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में बैजनाथ पाण्डेय नामक कौशिक गोत्रोत्पन्न सरयूपारीण ब्राह्मण के घर पर हुआ था। मेरी माता का नाम 'जयकली' था, जिसे बिगाड़कर लोग 'जयकल्ली' पुकारते थे।" (*अपनी ख़बर*, प्रथम संस्करण, 1960, पृष्ठ 17)

'उग्र' के परिवार में नामों का बिगड़ जाना अस्वाभाविक नहीं था, क्योंकि वे जिन आर्थिक विपन्नताओं में पैदा हुए थे, उसकी नियति ऐसी ही होनी थी।

बैजनाथ पाण्डेय बभनटोली के अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण थे, जो जजमानी वृत्ति द्वारा अपनी गृहस्थी का योग-क्षेम किया करते थे। सन्तानें कई पैदा हुईं, परन्तु निर्धनता के क्रूर प्रहार के कारण सौरगृह में ही दम तोड़ती गईं। 'उग्र' के पहले देवीचरण, श्यामाचरण, रामचरण आदि धरती पर चरण रखने के पहले ही धरती से उठ गये। निरीह माता-पिता को मौत की क्रूर लीला देखनी पड़ी। पोथी-पत्रा और पूजा-अनुष्ठान सभी बेकार गये। काम आया आदिम अन्धविश्वास जो, चरणाद्रि (चुनार) संस्कृति की पुरातन धरोहर था। इसलिए पैदा होते ही उन्हें (पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र') एक टका में शायद किसी दलित स्त्री के हाथों बेच दिया गया और उपेक्षात्मक शैली में नाम रखा गया 'बेचन' यानी दो पैसों में बिका हुआ शिशु। जायसी के युग में एक लाख टका में एक तोता बिका था—'रत्नसेन हीरामन चीन्हा, लाख टका बाम्हन कहँ दीन्हा'—परन्तु बीसवीं सदी के लगते-लगते महज़ एक टका में 'मानव-पुत्र' बिक गया। सम्भव है कि 'बेचन' के बिक जाने ने ही उसे क्रान्तिकारी लेखक बनने की परिस्थितियाँ प्रदान की हों।

पैदाइशी गली में बचपन

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जिस गली में पैदा हुए थे, उसका नाम था 'बभनटोली'। उस गली में एक घर तेली जाति का और दो-तीन घर 'कोरी' जाति के थे। ये दोनों जातियाँ दलित थीं। बाक़ी सभी ब्राह्मण—'तिवारी, पाठक, मिश्र और पाण्डेय थे, उनमें दक्खिनी नाके पर रहनेवाले भानुप्रताप तिवारी को छोड़कर शेष ब्राह्मण जजमानी वृत्ति द्वारा अपना भरण-पोषण करते थे। उस काल में केवल ब्राह्मण ही जजमानी (यजमानी) पेशा करने के अधिकारी थे। नक़द अथवा कुछ खाद्यान्न लेकर पूजा-पाठ, होम-जाप अथवा अन्य कर्मकाण्ड करानेवाले ब्राह्मण 'पुरोहित' कहलाते थे। इन्हीं पुरोहितों की वृत्ति जजमानी कहलाती थी। 'उग्र' के पिता बैजनाथ पाण्डेय बभनटोली के सबसे ग़रीब पुरोहित थे। 'उग्र' ने लिखा है,

> "हम लोगों की जजमानी यूँ ही जय सीताराम थी। कहिए हम शानदार भिखारी थे। भिखारी सड़क पर कपड़े फैला या गलियों में हाथ पसारकर भीख माँगता है, लेकिन हमें ग़रीब और ब्राह्मण जानकर जाने लोग हमारे घर भीख पहुँचा जाते थे।" (*अपनी ख़बर*, पृष्ठ 20)

ग़रीबी की इन्हीं प्रताड़नाओं ने 'उग्र' को बचपन की तमाम अनिवार्यताओं से वंचित कर दिया था। न भर पेट भोजन, न ज़रूरी कपड़े और न ही शिक्षा-दीक्षा की सुविधाएँ। उनके बड़े भाई घर में जुआ खेलवाते थे। बेचन दरवाज़े पर बैठकर

पुलिसवालों के आने की निगरानी करते थे। अगर जुआ सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता तो नाल की रक़म से आटा, चावल, दाल और नमक आता था और इस प्रकार कथमपि पेट पूजा का समाहार हुआ करता था। रात भर जागकर पुलिस-निगरानी की ड्यूटी करनेवाले बेचन को भी किसी परिचित जुआरी से पैसे-दो-पैसे मिल जाते थे। लेकिन जुए में नाल उतारने का धन्धा बहुत दिन नहीं चल सका। भाई पुलिस द्वारा पकड़े गये। जुर्माना भरना पड़ा और फिर देस छोड़ परदेस भाग गये। 'उग्र' का घर क़र्ज़ों से लद गया। इनकी माँ जिन्हें ये 'आई' कहते थे, पग-पग पर बेइज़्ज़त होने लगीं। घर में अबलायें और बच्चे दाने-दाने को मोहताज़ हो गये। इन्हीं मोहताज़ों में 'उग्र' भी थे। बेहद पीड़ा के साथ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने इज़हार किया था, "चुनार में अक्सर चूहे डण्ड ही पेला करते थे, या जजमानी से भिक्षा मिल जाती थी, या मेरी आई किसी की मजूरी कर कूट-पीसकर लाती थी। बड़ी मुश्किलों से सुबह खाना मिलता तो शाम को नहीं, शाम मिलता तो सबेरे नहीं। जहाँ भोजन-वस्त्र के लाले हों वहाँ शिक्षा-दीक्षा की क्या हालत रही होगी, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 26)

'उग्र' के पिता बैजनाथ पाण्डेय का जब देहान्त हुआ, तब 'उग्र' की अवस्था दो वर्ष छः महीने की थी। वे क्षय रोग से मरे थे। पिता का साया उठ जाने के कारण 'उग्र' अनाथ हो गये थे। इनके दोनों बड़े भाई रामलीला मण्डलियों में भर्ती हो गये थे। नाचने-गाने और अभिनय द्वारा किसी प्रकार अपना पेट चलाते थे। अभावों से जूझते-टूटते 'उग्र' रोग-ग्रस्त हो गये। 'मेरी देह में वह रोग था, जिसमें आयुर्वेदीय चिकित्सक लोहे की भस्म या मण्डूर खिलाते हैं।' (पृ. 35) अर्थात् वही पिता से अर्जित रोग-यक्ष्मा। लेकिन 'बेचन' जैसे सौन्दर्यहीन, अल्पप्राण और अनाकर्षक नाम वाले विक्रीत बालक को मौत ने भी अछूत माना। मृत्यु को इसको ग्रास बनाने में कोई स्वाद नहीं समझ में आया। जिस प्रकार छिपकली किसी बदबूदार कीड़े को निगलने के लिए झपट्टा तो मारती है, परन्तु वितृष्णा से छोड़ कर दूर हट जाती है, उसी प्रकार मौत ने भी बेचन को त्याग दिया। 'उग्र' ने स्वयं स्वीकार किया था कि उनका 'बेचन' नाम उन्हें ही नहीं मौत को भी नापसन्द था। (पृ. 18)

'उग्र' के जीवन में रोटी का ताण्डव अत्यन्त कारुणिक था। कितना विस्मायक था ताण्डव और करुणा का अपूर्व मेल। उन्हीं (उग्र) का कहना था,

> "मेरा भाई जब परदेस होता और घर में भूनी भाँग भी न होती, तब आई मुहल्ले-टोले से मन-आध मन गेहूँ ले आतीं, एक निहायत करुण गीत गाती-गाती मेरी तरुणी भाभी के साथ उसे पीसतीं। तब कुछ पैसे मिलते, तब हमारे घर चूल्हा चेतता, मुँह निवाले लगते।" (*अपनी ख़बर* पृ. 37)

पेट के लिए ललाते-बिललाते 'उग्र' के लिए कपड़े का सवाल ही क्या उठ सकता था? हिन्दी रचनाकारों में गोस्वामी तुलसीदास के बाद 'बारे ते ललात

बिललात फिरयो द्वार-द्वार' की कहानी 'उग्र' के जीवन में घटित हुई थी। 'उग्र' की माता उन्हें 'फटे-पुराने कपड़ों की कंथा बहुत अच्छी तो नहीं फिर भी ऐसी सी देती थीं, जिसे सरदी के दिनों में वे वरदान की तरह ओढ़-बिछा लेते थे।' चुनार के बभन टोली में 'उग्र' के घर की आर्थिक दशा छिन्न-भिन्न पड़ गयी थी। 'सिवाय मैली, मारकीनी, मुफ़्त मिली धोती और एकमात्र कुरते के 'उग्र' के सिर पर दो पैसेवाली दुपलिया भी मुहाल थी। पैर में चमरौधा तक नदारद, परन्तु न वे दुखी हुए और न ही नादिम। इस स्थिति के विषय में उन्होंने लिखा था,

> "बचपन और यौवन शायद स्वयं में इतने भरपूर होते हैं कि इस आलम में अभाव भी भावों भरे भासते हैं।" (पृ. 51)

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने नरक के आकर्षक सिरे से जीवन-दर्शन आरम्भ किया था। यह कम आश्चर्यजनक नहीं था कि उन्होंने स्वर्ग की अवधारणा के बर-अक्स नरक को अपने जीवन का दर्शन बनाया। यही जीवन-दर्शन उनके लेखन की भी प्राण-सत्ता बना। उन्होंने स्वर्ग को पुराणवाद की एक काल्पनिक सृष्टि बतलाई, क्योंकि उन्हें स्वर्ग जीवन में कहीं भी नज़र नहीं आया था, जबकि नरक का यथार्थ उनके क़दम-क़दम पर उभर कर सामने आ जाता था। उन्होंने लिखा,

> "नरक लाख बुरा-बदनाम हो, लेकिन अपना तो जीवन-संगी बन चुका है, सहज हो गया है, रास आ गया है।" (*अपनी ख़बर* पृ. 27)

पृथ्वी और नरक के दृश्य

कुल मिलाकर 'उग्र' की पृथ्वी भारतभूमि की सीमा नहीं लाँघ पाई थी। वे भारत के सम्पूर्ण का दर्शन भी नहीं कर पाए थे। लेकिन वे जहाँ भी रहे, उन्हें किसी न किसी नरक का सामना ज़रूर करना पड़ा। हालाँकि *मनुस्मृति* और *श्रीमद्भागवत* पुराण में इक्कीस नरकों का वर्णन था, परन्तु 'उग्र' ने अपनी रचनाओं में 'रौरव नरक' का उल्लेख कई बार किया था। यहाँ-वहाँ महानरक, वैतरणी नरक और कुँभीपाक नरक की भी चर्चा की थी।

हालाँकि 'रौरव नरक' के प्रति 'उग्र' की आस्थाएँ व्यंग्यात्मक थीं, परन्तु अकारण नहीं थीं। 'नरक' की कल्पना भले पुराणकालीन थी, परन्तु 'रौरव' लौह-ताम्र युग से भी पहले का शब्द था जो 'रुरु' मृगों का सम्बन्धवाचक था। प्राचीन काल में चरणाद्रि क्षेत्र (चुनार) और विन्ध्य मण्डल के वनों में 'रुरु' मृग बहुतायत से पाए जाते थे। चरणाद्रि की दुर्गादेवी और विन्ध्य अटवी की विन्ध्यवासिनी देवी के बलिकर्म में 'रुरु मृगों' और 'बभ्रु शूकरों' का बलिदान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। सम्भव है कि कालान्तर में बलि प्रथा के भयंकर दृश्य को ही 'रौरव' नरक कहा गया हो। 'उग्र' के प्रारम्भिक रचना-क्षेत्र में रौरव नरक का प्रयोग बड़े पैमाने पर हुआ करता

था। मूल्यों के विघटन और सामन्ती तथा उपनिवेशवादी शोषण की अभिव्यक्ति के लिए 'उग्र' ने प्रतीक तलाश किया 'रौरव नरक'। 'उग्र' ने अपने समय की दलित, दमित, उत्पीड़ित, क्षुधित और शोषित जनता के रोज़मर्रा जीवन को भी नरक के रूप में देखा था। उनके लिए बेईमानों, धूर्तों, कपटियों, यौन शोषकों, छद्माचारियों और अंग्रेज़ सत्ताधारियों के कुकर्म भी नरक से कम नहीं थे। 'उग्र' ने स्वीकार किया था, 'लगातार सुलभ होने से नरक भी धीरे-धीरे परिचित, प्रिय, प्रियवर यानी प्रियतम हो गया था। उन्होंने अपने नरक सन्दर्भ को मुक़म्मल बनाने के लिए ग़ालिब का एक शेर उद्धृत किया था—

'क्यों न फ़िरदौस को दोज़ख़ से मिला दें या रब!
सैर के वास्ते थोड़ी-सी फ़िज़ाँ और सही।'

साफ़ ज़ाहिर है कि 'उग्र' ने अपनी पृथ्वी के सभी नरक दृश्यों को अपने लेखन की फ़िज़ाँ माना था। उन्होंने अपने जन्म-स्थान सद्दूपुर मुहल्ला से लेकर अपने मृत्यु स्थान दिल्ली महानगर तक तमाम-तमाम नरक देखे थे और इन्हीं नरक वर्णनों में उनके जीवन की महागाथा अनुस्यूत हुई थी। यहाँ यह कहना उचित न होगा कि यह नरक-वर्णन 'उग्र' की एकांगी दृष्टि था, बल्कि सही तो यह था कि यह उनके समय और उनके जीवन का प्रामाणिक यथार्थ था। सन् 1926 के अपने जेल-जीवन के 'नरक' का वर्णन करते हुए 'उग्र' ने लिखा था—

बैरक हे, 'बर्थ', 'बेल' बेड़ियाँ हैं, बावले हैं,
ब्यूटीफूल बालटी की दाल बे-मसाला है।
चट्टा है, चटाई, चारु चीलर हैं चारों ओर
तौक़, तसली है, तसला है और ताला है।
ज़ाहिर जहान जमामार जमादार भी हैं,
कच्ची-कच्ची रोटी सड़े साग का निवाला है।
शाला क़ैदियों की काला कम्बल दुशाला जहाँ
'उग्र' ने वहीं पे फिलहाल डेरा डाला है।

देखा जा सकता है कि फ़िरंगी जेलों का यह नरक केवल 'उग्र' का ही नरक नहीं था, बल्कि उन सभी देश-भक्तों का नरक था, जो हिन्दुस्तानी आज़ादी के लिए अपनी क़ुर्बानियाँ देने में लगे थे।

सद्दूपुर में 'उग्र' का शैशव

'अहा! ग्राम-जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सब का मन चाहे', यह मैथिलीशरण गुप्त का ग्राम-स्वर्ग भले ही रहा हो, परन्तु 'उग्र' का पैतृक ग्राम 'जलालपुर माफ़ी', तप्पा परगना-हवेली, तहसील-चुनार, ज़िला-मीरजापुर और उनका

जन्म—गाँव (महल्ला) सद्दूपुर (मूल चुनार) उनके लिए स्वर्ग नहीं साबित हुए थे। जलालपुर माफ़ी में 'उग्र' के पिता बैजनाथ पाण्डेय की चन्द बीघे ज़मीन थी, जिससे परिवार के सदस्यों का साल भर खाने के लिए अनाज और पशुओं के लिए पर्याप्त भुस (भूसा) मिल जाता था। परन्तु पिता की मृत्यु के उपरान्त वह ज़मीन भी परिवार को होम चढ़ गयी। रह गयी थी एक टूटी बखरी, परन्तु आज वह भी किसी निर्दय मिट्टी में विलीन हो गयी है। अगर आज कोई साहित्य अथवा द्विवेदीकालीन इतिहास का शोधकर्ता पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की पितृ-भूमि या जन्म घर का शोध करना चाहे, तो वह पटवारी (लेखपाल) के खसरा में ही मिल सकता है। उसका ज़मीनी निशान नसीब नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ न कोई पट्ट संकेत है और न ही कोई स्मारक।

'उग्र' का शैशव उपनिवेशवादी विरूपताओं के बोझिल परिवेश में बीता। सद्दूपुर की बभनटोली, जिसमें वे पैदा हुए थे पूरी तरह टूट रही थी। आचरण में, व्यवहार में और संस्कृति के पुराने जीवन-मूल्यों में। विघटन और विस्थापन की महामारी फैली हुई थी। सनातन धर्म के नाश का प्रारम्भ हो गया था। पैसा और इन्सान के बीच छिड़े द्वन्द्व में इन्सान हारता चला जा रहा था। साठ वर्ष की उम्र में अपने शैशव काल को याद करते हुए 'उग्र' ने लिखा था,

> "उस 'जैनरेशन' का विश्वास धर्म से उठ रहा था। मुहल्ले के हर एक घर में एक न एक ऐसा जवान पैदा हो चुका था, जो पुरानी मर्यादाओं और धर्म को ताक पर रखकर उच्छृंखल आचरण में रत रहा करता था।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 20)

'उग्र' को अपनी गली (सद्दूपुर) के अधोगामी आचरणों की ज़बरदस्त चोटें लगी थीं। छठे वर्ष की देहरी पर क़दम रखते ही उनके कानों में 'वेश्या' या 'रण्डी' शब्द पड़ा। यही था उनका अक्षरारम्भ। उनके घर में मीरज़ापुर की एक टकैल वेश्या का प्रवेश शुरू हुआ। मुहल्ले के आधे दर्ज़न युवक वहाँ एकत्र होने लगे। इन युवकों के सरदार थे इनके बड़े भाई ही। घर में अखण्ड अराजकता फैल गयी। 'उग्र' की माता और भाभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जातीं। मुखर विरोध करने का साहस नहीं जुटा पातीं। आश्चर्यचकित 'उग्र' असहाय से सब कुछ देखते रहते। छह-सात वर्ष की अवस्था में ही इनके मन-पटल पर पुरुषवादी समाज द्वारा नारी-प्रताड़ना की अनन्त रेखाएँ खिंच गईं। 'उग्र' की शैशव-पीढ़ी ही ऐसी थी, जिसमें पुरुषों के विरोध के लिए स्त्रियों में प्रतिरोधी शक्ति का जागरण नहीं हुआ था, क्योंकि हिन्दी-क्षेत्र का नवजागरण मूलतः देश-मुक्ति की दिशा में मुड़ गया। इन परिस्थितियों में नारी-मुक्ति अथवा दलित-मुक्ति की कल्पना असम्भव थी। लेकिन 'उग्र' के शैशव के समक्ष ये परिस्थितियाँ एक दाहक सवाल बन कर उभरीं। बड़े भाई 'त्रिदण्डी' के हाथ से माँ और भाभी की निर्मम पिटाई से वे मन की गहराई तक आहत हुए थे। हालाँकि

उनका भयभीत और असहाय शैशव मूक ही रह गया था, लेकिन जब उन्होंने लेखन का मोर्चा सँभाला, तब शैशव काल में लगी मन की चोटों से 'रधिया भंगिन' निकली (बुधुआ *की बेटी*), 'फ़ीरोज़ी' पैदा हुई (सरकार तुम्हारी आँखों में) और 'चाँदनी' (चाँदनी) का अवतरण हुआ।

अज्ञात नहीं है कि 'उग्र' के कथा-साहित्य की नारियाँ पुरुष-प्रधान समाज के प्रतिरोध-केन्द्र के रूप में ही नहीं उभरीं, बल्कि वे अपनी हंगामेदार हिम्मत द्वारा मर्दों को बेरहमी के साथ दण्ड देने में भी समर्थ हुईं। शैशव-काल के कटु-मर्मान्तिक अनुभवों ने 'उग्र' को इतना झिंझोड़ा था कि उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में मर्द और औरत के परम्परागत सामाजिक समीकरण को छिन्न-भिन्न करके रख दिया था। 'उग्र' ने पुरुष शासित समाज में नारियों द्वारा रचनात्मक हस्तक्षेप करने में बहुत कम विश्वास किया। उन्होंने ऐसा क्यों किया, इसका उत्तर उनके शैशवकालीन जीवन को जानने वाले लोग भली-भाँति दे सकते हैं। अपने चौथेपन में अपनी शैशवकालीन तिलमिलाहटों को याद करते हुए 'उग्र' ने लिखा था,

> "मेरी माँ और भाभी को मकान के पिछले खण्ड में क़ैद कर मेरा भाई बिचले खण्ड में जुए का फड़ डालता, जिसमें मुहल्ला, क़स्बा और आसपास के गाँवों के शातिर जुआरी जुड़ते। चरस और गाँजे की चिलमें लपलपातीं; ब्यौड़ा यानी विकट देसी दारु की दुर्गन्धमयी बोतलें खुलतीं।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 24)

सगे बड़े भाई होकर भी त्रिदण्डी 'उग्र' के लिए असहनीय और बदशक्ल बन गये थे। वे माँ और पत्नी को जूतों, थप्पड़ों, घूसों और लातों से अक्सर थूरा करते थे। गाँजा, चरस या शराब के नशे में आपा खोए त्रिदण्डी पर माता और पत्नी के रोने-घिघियाने का कोई असर ही नहीं पड़ता था। भाई के इस आचरण से 'उग्र' असन्तुलित हो जाते, परन्तु घर की सरदारी पगड़ी बाँधे अन्नदाता भाई के सामने सिर न उठा पाते। उनके भाई ने घर के सारे गुरिया गहने ही नहीं बेच दिए, बल्कि पिता द्वारा एकत्रित धर्म और कर्मकाण्ड की पुस्तकें भी बेच दीं। सारा घर ठन-ठन गोपाल हो गया।

विक्रीत बालक 'उग्र' में परिवार की भारतीय चेतना का कोई आकार ही नहीं बन पाया। अपने शैशव-काल में वे निषेधों में जीते रहे और निषेधों से लड़ते भी रहे। 'लालयेत् पञ्चवर्षाणि' अथवा 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रो मित्रवत् आचरेत्' जैसे नीति वचन के विपरीत, उन्हें निषेधात्मक कुभाषित 'लालने बहवःदोषाः ताडने बहवःगुणाः' का सामना करना पड़ा। उन्होंने बचपन में पिता को मरते हुए, माँ को पछाड़ खाकर रोते हुए, भैया द्वारा भौजी को जूतों से पीटते हुए, क़र्ज़दाताओं द्वारा परिवार को बेइज़्ज़त होते हुए और जुआ खेलने के अपराध में उसी बिगड़ैल भाई को जेल जाते हुए देखा था।

जब बेचन का जन्म हुआ था, तब न कोई रीति-रिवाज़ न कोई पूजा-अनुष्ठान

न छठी-बरही और न ही सोहर-मंगल गाए गये थे। यहाँ तक कि सद्यःजात शिशु की श्रवण-शक्ति परखने के लिए थाली तक नहीं बजाई गयी थी, परन्तु सात लगते-लगते उसी बेचन को पुलिस द्वारा बड़े भाई के पकड़ जाने पर उसकी पीठ पर बेंतों की फरफराहट और हाथों में हथकड़ियों की झनझनाहट सुननी पड़ी थी। इस प्रकार की हज़ार विसंगतियों के बीच घटित हुआ था बेचन का गृह-शैशव-काण्ड।

शैशव के तीन काण्ड

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के शैशव का गृह-काण्ड बाँच कर इत्यलम् नहीं कहा जा सकता। उन्हें अपने शैशव-काल में तीन और बदनुमा काण्डों से गुज़रना पड़ा। उनका गृह-शैशव-काण्ड उनका मानस-काण्ड था, क्योंकि घर के भयंकर कोलाहलों ने ही उनके मनोभावों की दुनिया रची थी। 'उग्र' की कहानियों और उपन्यासों में गृह-शैशव-काल की दुनिया बार-बार मूर्त होती रही थी। मिसाल के तौर पर उन्होंने 'बदमाश' कहानी में लिखा, "वह ऐसे वातावरण में उत्पन्न हुआ, जिसमें उसे वैसा ही ज्ञान मिला, जिसे लोग 'बदमाशी' कहते हैं। उसकी जगह पर समाज का कोई भी बालक शायद बदमाश से एक इंच भी कम न होता।" (*पोली इमारत* पृ. 67)। 'उग्र' का यह कथन उनके शैशव-काण्ड की एक बानगी मात्र था। इसी शैशव-काल में उनकी मनःरचना हुई थी जो, मरते दम तक उनका पीछा करती रही थी।

लेकिन 'उग्र' के बाह्य अनुभवों के अगले तीन शैशव-काण्ड बड़े दुस्तर साबित हुए थे। सद्दूपुर गली का बृहद् शैशव-काण्ड, चुनार क़स्बा का शैशव महाकाण्ड और नागा भागवत दास तथा राम मनोहर दास की रामलीला मण्डलियों के मंचों पर सीता या लक्ष्मण के अभिनय का विराट्-काण्ड। इन तीनों काण्डों ने मिलकर ही उन्हें विद्रोही लेखक बनाया था। अगर वे इन वीभत्स काण्डों से न गुज़रते तो आगे चलकर द्विवेदी युग के बहिष्कृत लेखक न सिद्ध किए गये होते।

सद्दूपुर गली का बृहद् शैशवकाण्ड

आत्मकथा (*अपनी ख़बर*) लिखते हुए पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने उस गली (सद्दूपुर) और उसमें रहनेवाले लोगों का वर्णन विस्तार के साथ किया था। उनकी वह गली भारतीय समाज के श्रेणीवाद की एक लघु इकाई थी। वह गली वर्ण-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था दोनों स्तरों पर श्रेणी-विभाजन का समाजशास्त्रीय इतिहास थी। इस गली की कहानी की शुरुआत करते हुए 'उग्र' ने लिखा था,

> "गली के इस सिरे से उस सिरे तक ब्राह्मणों के मकान एक तरफ़ और दूसरी तरफ़ एक तेली और दो-तीन कोरियों के घरों को छोड़कर बाक़ी ज़मीनें ब्राह्मणों की थीं।" (पृ. 19)

यहाँ 'उग्र' ने 'एक तरफ़' और 'दूसरी तरफ़' पद-पदार्थों का प्रयोग बड़े सांकेतिक रूप में किया था। हालाँकि वर्ण-व्यवस्था के आधार पर भारतीय समाज का श्रेणी-बँटवारा चार स्तरों पर किया गया था, परन्तु उग्र-काल आते-आते इस विभाजन का प्रबल रूप द्विस्तरीय होने लगा था यानी 'सवर्ण-समाज' और 'अवर्ण-समाज' (ग़ैर-सवर्ण समाज)। 'उग्र' की विचारधारा के तहत 'दलित-वर्ग' भी असवर्ण समाज का ही एक हिस्सा था। संयोग ही था कि सद्दूपुर की गली में एक तरफ़ केवल ब्राह्मणों के घर थे और दूसरी तरफ़ केवल दलितों के। स्वाभाविक था कि दलित घरों की तरफ़ ब्राह्मणों के घर न होते। दलितों की तरफ़ की ख़ाली पड़ी ज़मीन के स्वामी ब्राह्मण ही थे, क्योंकि उस समय तक दलितों को भू-स्वामित्व का अधिकार नहीं मिला था।

अपनी ख़बर में 'उग्र' ने सद्दूपुर गली की जैसी कैफ़ीयत दी थी, उसके अनुसार वह गली पूँजी की दृष्टि से भी दो ही स्तरों पर विभाजित थी। उन्होंने लिखा था,

> "दो-तीन घरों को छोड़कर बाक़ी सभी ब्राह्मण खाते-पीते खासे। एकाध तो पूँजीवाले भी। दक्खिनी नाके पर भानुप्रताप तिवारी, जिनके बड़े-बड़े दो-दो मकान। फिर ग़रीब मुसई पाठक, फिर मेरे पिता, चचा भाई विन्ध्येश्वरी पाण्डेय, फिर ब्रह्मा मिश्र की हवेली। जय मंगल त्रिपाठी का घर और अन्त में बेचू पाण्डेय का सहन। एक भानुप्रताप तिवारी को छोड़कर बाक़ी सभी ब्राह्मण जजमानी वृत्तिवाले थे। हवेली वाले ब्रह्मा मिश्र की जजमानी सबसे ज़्यादा थी। बाग़-बग़ीचे, खेती-बाड़ी, लेन-देन भी होता था।" (पृ. 19-20)

'उग्र' द्वारा वर्णित सद्दूपुर गली के ब्राह्मणों की आर्थिक अवस्थाओं पर ध्यान देने से अज्ञात नहीं रह जाएगा कि पूँजीधारी भानुप्रताप तिवारी और जजमानी करके घर चलानेवाले ब्राह्मणों की द्विस्तरीय आर्थिक दशा थी। जजमानी वृत्तिवाले ब्राह्मणों में भी दो स्तर थे—पहला ब्रह्मा मिश्र का घर और दूसरा शेष ब्राह्मण। आश्चर्य था कि 'उग्र' ने जजमानी पेशा करनेवाले ग़रीब ब्राह्मणों को भी दो वर्गों में विभाजित दिखाया था। पहला वर्ग था ग़रीब मुसई पाठक का और दूसरा वर्ग 'उग्र' के पिता बैजनाथ पाण्डे का, जो महज योग क्षेम गृहस्थीवाले थे।

'उग्र' ने आत्मकथा के माध्यम से भारत की सामाजिक और आर्थिक वर्ग चेतना की बड़ी सूक्ष्म प्रस्तुति की थी। सद्दूपुर गली के इस बृहद शैशव-काण्ड की तफ़सील उन्होंने तब दी थी, जब वे साठ वर्ष की उम्र पार कर रहे थे।

यह कम आश्चर्यजनक नहीं था कि 'उग्र' ने आत्मकथा के 134 पृष्ठों में 89 पृष्ठ सद्दूपुर गली के भानुप्रताप तिवारी और बच्चा महाराज की तशरीह में ख़र्च कर दिया था। लेकिन यह अकारण नहीं था। 'उग्र' ने अपने-अपने स्तर के उन दोनों पूँजीभोगी चरित्रों को वैयक्तिक परिधि से बाहर निकालकर समाज के प्रतिनिधि चरित्र

के रूप में प्रस्तुत किया था। ये दोनों चरित्र 'उग्र' की रचना-भूमि में भिन्न-भिन्न नामों और भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में हमेशा उपस्थित होते रहे थे। 'उग्र' के लेखन का सारा वर्ग-संघर्ष उन्हीं चरित्रों से अपना सृजन संबल ग्रहण करता था। ये दोनों चरित्र पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के अभ्यन्तर और बाह्य अनुभवों के सच्चे निर्माता थे। उन्होंने लिखा था,

> "बचपन में मेरे मुहल्ले में दो हस्तियाँ ऐसी थीं, जिनका कमोबेश प्रभाव मुझ पर सारे जीवन रहा। उनमें एक थे भानुप्रताप तिवारी, दूसरे महादेव मिश्र उर्फ़ बच्चा महाराज।" (*अपनी ख़बर* पृ. 69)

'उग्र' की आत्मस्वीकृति और उनकी रचनाओं की तुलना करने से यह अज्ञात नहीं रह जाता कि भानुप्रताप तिवारी और बच्चा महाराज की जीवन-शैलियों का प्रभाव 'उग्र' की रचना-मानसिकता पर निरन्तर बना रहा। भानुप्रताप और बच्चा महाराज परस्पर विरोधी चरित्र थे। पहले नास्तिक होते हुए भी नवजागरण को गति देनेवाले थे, परन्तु दूसरे चुनार के क़िला में रहनेवाले भ्रष्ट अंग्रेज़ सैनिकों की तरह उपभोक्तावादी। अगर ग़ौर किया जाए, तो ये दोनों चरित्र 'उग्र' की रचनाओं में हमेशा हाज़िर होते रहे थे, कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं अप्रत्यक्ष।

आश्चर्य तो तब होता है कि 'उग्र' के बृहद् शैशव-काण्ड के ये दोनों महापुरुष उनकी रचनाओं की विषय-वस्तु के रूप में ही नहीं उभरे, बल्कि एक सीमा तक वे (उग्र) स्वयं उन दोनों की जीवन-शैली भी जीते रहे।

भानुप्रताप तिवारी ने सनातन धर्म और सनातन ग्रन्थों की तमाम मान्यताओं को दर-किनार कर दिया था। मिर्ज़ापुरी भाषा में *रामचरित मानस* का अनुवाद करते हुए उन्होंने,

> "ऋषि मुनियों की खिल्ली उड़ाई थी। राम लक्ष्मण को बहकाने-फुसलाने और उनके साथ क्रूरता करने के आरोप में मिथिला की महिलाओं द्वारा महर्षि विश्वामित्र को अपमानित करने की नयी कल्पना की थी तथा 'रघुनन्दन राम' को तुलसीदास के तरह परम ब्रह्म के रूप में स्वीकार नहीं किया था।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 70)।

अस्पष्ट नहीं है कि भानुप्रताप तिवारी की यह विद्रोह-वृत्ति थी। चुनार जैसे पिछड़े क़स्बे में रहकर भी उन्होंने प्राचीन के निषेध का साहस दिखलाया था।

हालाँकि भानुप्रताप तिवारी 'उग्र' के शैशव-काल में ही मर गये थे, परन्तु मरते-मरते उन्होंने अपनी समूची रचनात्मक अन्तरात्मा 'उग्र' की सर्जक अन्तरात्मा को सौंप दी थी। भानुप्रताप तिवारी चुनार में विश्वकोश माने जाते थे। वे अरबी, फ़ारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी, बृजभाषा एवं खड़ी बोली के मर्मी ज्ञाता थे। विविध भाषाओं की लगभग दस हज़ार पुस्तकों के स्वामी थे। कबीर, दादू, दरिया, मलूकदास, रैदास आदि अ-ब्राह्मण सन्तों के प्रति उनका अनुराग विशेष था। उन्होंने उन सन्तों की

टीकाएँ और समीक्षाएँ लिखीं। बनारस में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे और चुनार में भानुप्रताप तिवारी। सात वर्ष का बालक बेचन अपने चुनार के भारतेन्दु-मण्डल यानी भानुप्रताप-मण्डल का अकेला सदस्य बना। जब बेचन ने अपने शैशव काल से निकल कर जवानी की दहलीज़ पर पैर रखा, तब वह बेचन नहीं रहा, 'उग्र' हो गया। उनकी उग्रता में भानुप्रताप तिवारी आसन मार कर बैठ गये। भानुप्रताप तिवारी की परम्परा विरोधी सारी उग्रताएँ, यहाँ तक कि कुछ ख़ामियाँ भी पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की लेखन-यात्राएँ बनीं। 'उग्र' के जीवन और रचना दर्शन को जानने के लिए भानुप्रताप तिवारी का जीवन-वृत्त जानना बहुत ज़रूरी है।

'उग्र' भानुप्रताप तिवारी की मृत्यु के बाद उनके वंश के घृण्य पतन के भी क़रीबी दर्शक थे। उनके जुआरी, शराबी और वेश्यागामी पुत्र रामग़ुलाम तिवारी भी 'उग्र' के कथा-चरित्रों में उभरे। तेरह चौदह-साल का उनका पौत्र 'नन्दन' 'चॉकलेट' का पात्र बना। इस नन्दन के बारे में 'उग्र' ने लिखा था :

> "नन्दन, तेरह-चौदह साल का—जो दिन में सज्जन पड़ोसियों के यहाँ पशुवत् परिश्रम करने और रात में दुष्टों के साथ कुकर्म करने में टुकड़े पाता था।" (*अपनी ख़बर* पृ. 79)

भानुप्रताप तिवारी के पौत्र 'नन्दन' की ज़िन्दगी ने 'उग्र' को झकझोर कर रख दिया था। उत्तर-प्रदेश के पूर्वांचल में बाल मज़दूरी का पूरा कैरेक्टरिस्ट उनके ज़ेहन में उत्कीर्ण हो उठा था।

कहना न होगा कि भानुप्रताप तिवारी 'उग्र' के बृहद् शैशव-काण्ड के केन्द्रीय पात्र थे, जो उनके मन-मस्तिष्क में ही नहीं उनकी स्याही और लेखनी में घुल गये थे। वे 'उग्र' के कथा-साहित्य के पाज़िटिव पात्रों में रह-रह कर अपनी झलक मारते रहते थे।

हालाँकि बच्चा महाराज (महादेव मिश्र) भानुप्रताप तिवारी की तरह निषेध्य (Accordant) प्रभाव न होकर निषिद्धधर्मी थे, परन्तु उन्होंने भानुप्रताप की अपेक्षा 'उग्र' के रचना-चैतन्य का अधिक आकाश घेरा। मनुष्य के आचरण की जितनी भी निषेध्य वृत्तियाँ हो सकती थीं, बच्चा महाराज में सब थीं। बच्चा महाराज में जीवन के हज़ार-हज़ार छद्मों के परिदृश्य उभरते रहते थे। वे व्यंग्यपूर्ण जीवन के महाकाव्य थे, इसलिए 'उग्र' ने आत्मकथा की किताब *अपनी ख़बर* में उनका चरित्र-चित्रण काव्यात्मक शैली में किया था। मसलन, वेश्या बाज़ार में यार की तरह, अय्यार की तरह, तन्त्री की तरह, मन्त्री की तरह, बुज़ुर्ग की तरह, तरह-तरह की सूरतें हर तरह से देखते ज़िन्दगी के राजपथ से बच्चा गुरु लहर-बहर नब्बे की उम्र में गुज़रे। उनके विचित्र चरित्र के आकर्षण से मुहल्ले के तरुण बरबाद हो गये। कुछ नहीं तो सैकड़ों तरुणों को उन्होंने हराम घाट पर इस उत्साह से उतार दिया होगा मानों राम का ही काम अंजाम दे रहे हैं। (पृ. 89)

'उग्र' ने बच्चा महाराज के साथ अपने और अपने परिवार के रिश्तों को भी गोपनीय नहीं रखा। वे 'उग्र' के तीसरी से छठी क्लास तक हिन्दी टीचर थे। 'उग्र' के बड़े भाई त्रिदण्डी को चौपट घाट उतारने की प्रथम भूमिका बच्चा महाराज ने ही निभाई थी। वे सारे जीवन प्रथम श्रेणी के धूर्त, अय्याश, रंगीन मिज़ाज, सर्वभक्षी, सर्वव्यापी और सर्वभोगी बने रहे। परन्तु आकर्षक वक्ता भी थे, सुरीले कण्ठ से लोगों को मोहित कर लेते थे। *दुर्गासप्तशती* का पाठ करते थे, पूजा पाठ में विशेष रुचि दिखलाते थे। 'ज्योतिष और वैद्यक, तन्त्र और मन्त्रों में भी उनकी मार्मिक गति थी। वह बात-बात में तेज़ फ़िकरा, कोई श्लोक खण्ड, कोई दोहा-चौपाई शेर या कहावत जोड़ने में निहायत निपुण थे। (*अपनी ख़बर,* पृ. 83)

बच्चा महाराज जीवन भर गाँठ के पूरे मतिमन्दों को अपने हत्थे चढ़ाते रहे। अफ़ीम के ऊपर गाँजे की लम्बी चिलम एक ही हाथ की मुट्ठी से फुफकारते हुए लपलपा देते थे। वे सारे बनारस की वेश्याओं के विदित आचार्य थे। चुनार से लेकर बनारस तक लोग गन्दी और भद्दी गालियाँ देना बच्चा महाराज से सीखते थे।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने बच्चा महाराज के चरित्र-चित्रण में इतना शोख़ रंग इसलिए नहीं भरा कि वे कहीं उनसे गुस्सा थे, बल्कि इसलिए कि बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों के उपभोक्तावादियों की शक्लें पहचानी जा सकें। उन्होंने बच्चा महाराज के माध्यम से अपने समय की अक्सी-तस्वीर पेश की थी। चुनार के वे ही बच्चा महाराज 'उग्र' के कथा-साहित्य में बनारस और कलकत्ता से लेकर मुम्बई और दिल्ली तक वर्ग-चेतना के रूप में उभरते रहे। 'उग्र' के सप्तवर्षीय जीवन में बच्चा महाराज का प्रवेश हुआ था और वे साठ वर्षों तक उनकी लेखनी के प्रेरणा धर्म बने रहे।

'उग्र' ने बच्चा महाराज के माध्यम से साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों के सम्पर्क के कारण शहरों और क़स्बों में होनेवाले सांस्कृतिक विस्थापनों की भी नक़्शबन्दी की थी। सांस्कृतिक तस्वीर की एक एक वक्र रेखा खींचते हुए 'उग्र' ने लिखा था "साधारण मूँछें, घुटी दाढ़ी, सिर पर इंगलिश कट केश, बच्चा गुरु फेल्ट टोपी, बनियान, कड़े कालर कफ़ की क़मीज़, शेरवानी, नफ़ीस धोती, जुरीब और पम्पशू या बिलायती कट बूट पहना करते थे। नाक पर हमेशा चश्मे, हाथ में छड़ी और ज़ेब में रेल-गार्ड घड़ी।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 88)

देखा जा सकता है कि किस प्रकार बीसवीं सदी केवल खान-पान और पहनावा में ही विलायतीकरण के साथ नहीं आयी, बल्कि उसने मूँछ और दाढ़ी के सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया भी शुरू कर दी।

स्पष्ट है कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने भानुप्रताप तिवारी और बच्चा महाराज के बहाने अपने शैशव-काल के चुनार का आर्थिक और सांस्कृतिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया था।

पुराना चुनार, नया चुनार और 'उग्र'

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी जन्मभूमि चुनार पर एक पूरा अध्याय (*अपनी ख़बर*, पृ. 38 से 51 तक) लिखा था। पूरा अध्याय एक मुक़म्मल रिपोर्ताज़ है। इस रिपोर्ताज़ में पुराने चुनार और नये चुनार की द्वन्द्वात्मक स्थितियों के यथार्थ तथा प्राचीन इतिहास, मध्यकालीन और आधुनिक इतिहासों के साक्ष्य समकालीन जीवन के लिए भी कम प्रेरक नहीं हैं। इसमें भूमि, काल और लेखन का विचारधारात्मक त्रिकोण है। इस त्रिकोण को समझे बिना न 'उग्र' के व्यक्तित्व (जीवनी) को समझा जा सकता है न ही उनके कृतित्व को। चुनार में 'उग्र' के तन और मन, दोनों गढ़े गये थे। यही कारण था कि 'उग्र' के साहित्य में चुनार उनके शैशव-जीवन के महाकाण्ड के रूप में मूर्त हुआ। इसी चुनार ने उन्हें जीवन और लेखन, दोनों में क्रान्तिकारी बना दिया।

पुराना चुनार 'उग्र' का जातीय 'अस्मि' था नया चुनार उनके साहित्य का 'अस्ति' था। उन्होंने 'अस्मि' और 'अस्ति' के अन्तरंग रिश्तों का मूल्य चुनार में ही समझा था। उन्होंने यों ही नहीं लिखा था "आज भी जब मैं ख़ानाबदोशों, बंजारों, जिप्सियों का गिरोह देखता हूँ, तब मेरा मन करता है कि ललक कर उन्हीं में लीन हो जाऊँ, विलीन।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 22-23) अगर ग़ौर से देखा जाए तो 'उग्र' का सम्पूर्ण साहित्य 'अस्मि' (मैं) और 'अस्ति' (वह) के परस्पर विलीनीकरण का साहित्य है। उन्हें पुराने चुनार और नये चुनार ने मिलकर जो सृजन-उपादान दिए थे, वे भजाते-भजाते भी नहीं चुके।

सभी जानते हैं कि पुराने चुनार से 'उग्र' को पुराणों के अगणित मिथक मिले थे, मध्यकालीन चुनार से इतिहास की गतिविधियाँ और आधुनिक चुनार से साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी शासन में सत्ता और जनता के बीच उभरी दूरियों की समझदारियाँ मिली थीं। चुनार को उनके शैशव काल का महाकाण्ड तो बनना ही था। *चन्द हसीनों के ख़तूत* (1923), *दिल्ली का दलाल* (1925), *बुधुआ की बेटी* (1927) और *शराबी* (1929) आदि उपन्यासों से लेकर *फागुन के दिन चार* (1929) और आख़िरी उपन्यास *जुहू* तक चुनार की धड़कनें सुनी जा सकती हैं। सच तो यह है कि जो 'उग्र' के चुनार से वाकिफ़-उल-हाल नहीं होंगे, वे उनकी रचनाओं के अनेक रहस्यों और मार्मिकताओं में प्रवेश तक नहीं पा सकते।

चुनार के विवरण सन्दर्भों में 'उग्र' ने प्रथम स्तर पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अयोध्या और बेचन के चुनार की बहुमंज़िली तुलना की थी। स्वाभाविक था कि इस तुलना में चुनार अयोध्या से बेहतर साबित होता। उनके लिए चुनार का वर्तमान जितना भी बदहाल क्यों न था, परन्तु इसका अतीत अत्यन्त गौरवशाली था। 'जननी जन्मभूमिः च स्वर्गादपि गरीयसी' का जो भाव चुनार को लेकर निर्मित हुआ था, उसी

के प्रभाव में वे भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में कूदे थे और सन् 1921 में जेल भी गये थे। चुनार 'उग्र' के रचनाकार का रचनाकार था। ऐसे ही अवसरों पर किसी लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व के अन्तः सम्बन्ध बनते-बिगड़ते हैं। 'उग्र' और उनके साहित्य के परीक्षण के लिए तत्कालीन चुनार का अभिलेख आज भी एक साक्ष्य-सम्पन्न प्रयोगशाला है।

'उग्र' के लिए 'कुजा अयोध्या, कुजा चुनार।' (*अपनी ख़बर*, पृ. 39) रहे थे। अयोध्या के 'कु' (पृथ्वी) 'जा' (पुत्री) 'सीता' थीं परन्तु चुनार में क्या था, जिसके कारण 'उग्र' ने इसे 'कुजा' कहा। 'कुज' मंगल को कहते हैं और 'कुजा' मंगल चण्डिका को। मंगल चण्डिका यानी वह विशेष दुर्गा, जो चरणाद्रि (चुनार) के बाएँ पैर पर स्थित है। 'उग्र' ने 'कुजा' के माध्यम से मिथक के एक उलझे रहस्य की सुलझी व्याख्या कर दी थी। यही होता है लेखक का एक अतिरिक्त व्यक्तित्व, अन्यथा पैदा तो सभी होते हैं, पढ़ते भी हैं; लिखते भी हैं, परन्तु 'व्यक्तित्व' के लिए तरसते रह जाते हैं।

'प्रकृति-दत्त शोभा' के चित्रण-प्रसंग में 'उग्र' चुनार के उत्तर-पश्चिम में प्रवाहित गंगा को भागीरथी और जरगो नदी (जरद्गव) को विन्ध्य-बालिका लिखा था। 'उग्र' द्वारा किए गये इस गूढ़ मिथकीय विन्यास पर अभी तक प्रकाश नहीं डाला जा सका है। उन्होंने 'जरगो' को इसलिए विन्ध्यबालिका कहा था, कि वहीं पर चन्द्रमा की वीथी थी, जिसमें विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा तोरण, सर्प और कुण्डल के रूप में विन्ध्यपुत्री जरगो का शृंगार करती थीं। तोरण, सर्प और कुण्डल जरगो के आसपास रहनेवाली आदिम जातियों के प्रतीक चिह्न थे। यह चुनार की दक्षिणी सीमा की पूरी संस्कृति थी, जिसके अधिष्ठाता वृद्ध गो-वंश का पालन-पोषण करनेवाले जरद्गव कोई आदिवासी पुरा पुरुष थे। सम्भवतः इन्हीं की मातंगी स्त्री (चाण्डाल कन्या) से विन्ध्यबालिका का जन्म हुआ था।

अप्रासंगिक होते हुए भी यहाँ यह कहना निरर्थक न होगा कि 'जरत्गव' (संस्कृत) और 'जरत्उश्तु' (फ़ारसी) में पद और पदार्थ की ग़ज़ब की समानता है। 'जरत्गव' का अर्थ बृद्ध बैल और 'जरत्उश्तु' का अर्थ बृद्ध ऊँट। 'जरदगव' पुरा आदिवासी संस्कृति के अधिवक्ता थे, जबकि 'जरदश्तु' फ़ारसी धर्म के पुरा आचार्य थे।

'उग्र' ने चुनार को विन्ध्याचल का आँगन कहा था अर्थात् वह भाग, जिसमें घर के प्रत्येक कक्ष के द्वार खुलते हों। इस दृष्टि से विन्ध्याचल के पुराण और इतिहास-कक्षों में प्रवेश करने के लिए चुनार के प्रांगण में आना ज़रूरी था। उन्होंने इस आँगन का सन्दर्भ तमाम पुराण-कथाओं के उल्लेख द्वारा उभारा था। राम द्वारा सुबाहु-ताड़का वध इसी आँगन के इर्द-गिर्द किया गया था। यह चुनार क्रान्तिकारी ब्रह्मर्षि वैतानिक विश्वामित्र का सिद्धाश्रम था। जरासंध ने चुनार-दुर्ग में ही सोलह

हज़ार रानियों को क़ैद किया था। सम्राट् विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि की तपःस्थली चुनार था। यहीं बल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठल का जन्म हुआ था। चुनार दुर्ग आल्हा-ऊदल से भी सम्बद्ध रहा था। 'उग्र' के अनुसार पुराण की ये सारी मिथ-चेतनाएँ चुनार की मिट्टी में रची-बसी थीं। इसी क्रम में उन्होंने अपना परिचय देते हुए लिखा था, "बन्दा तो चुनार की मिट्टी है" यानी चुनार की मिट्टी में जो कुछ भी था, वह 'उग्र' के विचारों में था, भावों में था, कल्पनाओं में और उनकी प्रभूत रचनाओं में था।

'उग्र' को चुनार में सुरक्षित हज़रत मुहम्मद की दाढ़ी के पवित्र बाल, क़दमे रसूल और हज़रतवली क़ासिम सुलेमानी की दरगाह में भी भारतीय जीवन की वे सारी सच्चाइयाँ नज़र आयी थीं, जो उनके उपन्यासों और कहानियों की यथार्थ संवेदनाएँ बनीं। *चन्द हसीनों के ख़तूत, गंगा माता* जैसे उपन्यास और 'खुदाराम', 'ईश्वर द्रोही', 'खुदा के सामने', 'दोज़ख़! नरक!!', 'मूर्खा' और 'दूध के कार्ड' जैसी कहानियाँ चुनार की मिट्टी से अंकुरित हुईं थीं।

'उग्र' के लेखकीय जीवन में चुनार का मध्यकालीन इतिहास अधिक उर्वर नहीं साबित हुआ था। हालाँकि चुनार दुर्ग में हुमायूँ ओर शेरशाह सूरी से लेकर तमाम मुस्लिम बादशाहों ने शरण ली थी, परन्तु 'उग्र' का लेखन उनसे बहुत ज़्यादा प्रभावित नहीं हुआ था। लेकिन राजा चेतसिंह, पंजाब की रानी जिन्दा और वाजिद अली शाह को लेकर उन्होंने अपनी कई कहानियों के प्रभा-मण्डल तैयार किए। इन सभी लोगों ने चुनार के क़िले में शरण ली थी और इनके चुनारवी जीवन की सतर-दर-सतर 'उग्र' के मनः पटल पर अंकित हो गयी थी। अंकित करने की भूमिका निभाई थी चुनार के इनसाइक्लोपीडिया भानुप्रताप तिवारी ने। 'उग्र' ने 'पंजाब की महारानी' और 'देश-द्रोह' कहानियों में रानी जिन्दा और चेतसिंह के विरोधी चरित्रों का ऐतिहासिक चित्रण किया था। 'उग्र' ने 'पंजाब की महारानी' की शुरुआत 'दाग़' के एक शेर से की थी—

नातबानी नातमानी नाउमेदी नारसी
हमने भी रक्खा है क्या-क्या दामने फ़रियाद में।

रामलीला मण्डलियों के कटु अनुभव

रामलीला मण्डलियों में सीता और लक्ष्मण की भूमिका निभाते पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने साधुओं, महात्माओं, महन्तों और नागाओं के छद्म आचरणों को निकट से देखा था। इन रामलीला मण्डलियों के प्रायः सभी साधुवेशधारी चरित्र आचरण से असाधु थे। ये आचरण की भूमि पर स्वयं तो फिसलते ही थे साथ ही साथ स्वरूपों को भी फिसलने के लिए विवश कर देते थे। दस से सोलह वर्ष की

अवस्था का जो बालक राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, अथवा सीता का अभिनय करता था, उन्हें रामलीला मण्डलियों में 'स्वरूप' कहा जाता था। नियति की लाचारी थी कि 'उग्र' को भी दस वर्ष की अवस्था में स्वरूप बनना पड़ा और लक्ष्मण या सीता की भूमिका में रामलीला के लोकमंच पर उतरना पड़ा, जो उनके शैशव-जीवन का विराट-वीभत्स काण्ड साबित हुआ।

परिवार के आर्थिक अभावों से जूझने में असमर्थ 'उग्र' को ग्यारह वर्ष की अवस्था (सन् 1910) में ही नागा भागवत दास की रामलीला मण्डली में शामिल होना पड़ा था। यह मण्डली राम की अयोध्या की थी। इसका व्यवस्थापक सूत्रधार था महन्त नागा भागवत दास, जो स्वभाव से अत्यन्त लोभी और चरित्र से वटुक-विलासी भी था। वह प्रायः अविभाजित भारत के पंजाब प्रान्त में ही लीलाएँ आयोजित करता था। यह अकारण नहीं था। वहाँ महन्त को भक्त-दर्शकों और स्वरूप-प्रेमियों की भारी भीड़ मिल जाती थी, जिनसे उसे भारी रक़म के अलावा रेशम, ऊन, काठ के उपकरण, चाँदी के पात्र और सोने के आभूषण तक मिल जाते थे।

'उग्र' नागा भागवत दास की मण्डली में लगभग साल भर तक लक्ष्मण की भूमिका निभाते रहे। उनके लिए संयोग यह अच्छा था कि इसी मण्डली में उनके दो बड़े भाई उमाचरण और श्रीचरण भी अभिनय करते थे। इन दोनों के कारण इन्हें मण्डली में वाज़िब संरक्षण मिल जाता था। इसी मण्डली के साथ 'उग्र' ने अमृतसर, लाहौर, सरगोधा, मेड़ी, चुहड़काणा, पिंडदादन ख़ाँ, मोंटगुमरी, कोहाट और बन्नू तक की यात्राएँ कीं। इसी क्रम में उन्होंने बृहत्तर पंजाब के जनपद देखे, जनपदीयता देखी, भक्तिभाव तथा राष्ट्र-प्रेम देखे, शूरता-वीरता देखी, फ्रण्टियर क्षेत्र की यौन-लिप्साएँ देखीं और वहाँ की धन-धान्य सम्पन्नताएँ देखीं।

हालाँकि महन्त भागवतदास की मण्डली में काम करते हुए 'उग्र' पैसा तो नहीं एकत्र कर पाए, लेकिन अपने लेखकीय कर्म के लिए वस्तु-संग्रह करने में नहीं चूके। जैसे अनुभव, वैसी ही रचनाएँ। न लाग, न लपेट और न ही आदर्श की छद्म चाशनी। रामलीला मण्डली छोड़ने के बारह वर्षों बाद उन्होंने लिखा, "अगर सत्य को ज्यों का त्यों चित्रित कर देने में कोई कला हो सकती है, तो मेरी इन कहानियों में भी कला है। और यदि नहीं, कला हमेशा शुद्ध सत्य ही नहीं हुआ करती, तो मेरी ये धधकती कहानियाँ कला-शून्य हैं। मैं उस कला को लिखना नहीं जानता। मैं उस कला को जानने की चेष्टा भी नहीं करना चाहता।" यह कैफ़ीयत उन्होंने सन् 1925 में दी थी, चॉकलेट की संकलन-प्रस्तुति में। कबीरदास को भी छद्म लेखनवादियों को फटकारते हुए कहना पड़ा था 'जो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं', 'उग्र' ऐसे आरोपों से हमेशा अपने को बचाते रहे; उन्होंने केवल वही लिखा था, जो उन्होंने देखा था। कल्पना-प्रसूत साहित्य से उन्हें नफ़रत थी।

सन् 1911 और 1912 में भी 'उग्र' को रामलीला मण्डली के क्षुद्र मंच से मुक्ति नहीं मिली। बस इतना नया हुआ कि वे नागा भागवतदास की मण्डली छोड़कर महन्त राममनोहर की रामलीला-मण्डली में चले गये। लेकिन उनके साथ 'गड्ढे से निकला, कुएँ में गिरा' की कहावत चरितार्थ हुई। राममनोहर नागा भागवतदास की अपेक्षा चरित्र से ज़्यादा कमज़ोर था। वह अपनी लीला मण्डली के स्वरूपों को 'कुरूप' बनाने में ज़रा भी नहीं हिचकता था। इस मण्डली में 'उग्र' सीता की भूमिका निभाते थे।

महन्त राम मनोहरदास की रामलीला पार्टी पाप करने की पार्टी थी। वह महन्त स्वयं पाप का केन्द्र था, और उसके केन्द्र से निकलकर पाप-परिधि पर रहनेवाले कलाकारों तक पहुँच जाता था लेकिन 'उग्र' इन पापियों के हथकण्डों से बचे रहते थे। इसका कारण देते हुए उन्होंने लिखा था,

> "मैं बच जाता इन दुष्ट लीलाधारियों से अपने दो-दो बड़े भाइयों के सबब जो तेजस्वी अदाकार और तगड़े जवान थे। फिर भी मैं बिगड़ा नहीं, ऐसा कहना 'बनना' होगा।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 63)

'उग्र' के लिए दोनों रामलीला मण्डलियों के अनुभव बड़े कड़वे साबित हुए थे। उनकी रचनाओं में कई ऐसे स्थल आये थे, जिनमें उनकी अनुभूत कड़वाहटें शब्दों तथा रूपों में संक्रमित हो गयी थीं। लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि रामलीला मण्डलियों की स्थान-स्थान की यात्राएँ इनके लिए काल-वाचन, देश-वाचन और संस्कृति-वाचन में काफ़ी सहायक भी हुईं। इन्हीं अनुभवों के आधार पर उन्होंने लिखा था,

> "फ़ीरोज़पुर से बीस मील की दूरी पर, मुदकी के मैदान में आज (18 दिसम्बर, 1845) क्या हो रहा है? चारों ओर आग-वृष्टि! चारों ओर मारकाट!! एक ओर अंग्रेज़ सिक्खों का सर्वस्व नाश करना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें धन-धान्यमय वीर-जनक पंजाब-प्रदेश चाहिए। दूसरी ओर सिक्ख वीर अंग्रेज़ों के नाश पर कटिबद्ध हैं; क्योंकि उन्हें दृढ़ निश्चय है कि अंग्रेज़ उनकी जन्मभूमि को अपनाना चाहते हैं—उनकी माता को बन्दिनी बनाना चाहते हैं।" (*देश-द्रोह-काल-कोठरी*, कहानी-संकलन, पृ. 15)

रामलीला मण्डलियों द्वारा की जानेवाली यात्राओं और वहाँ के ऐतिहासिक मौखिक घटनाओं से 'उग्र' ने चाहे जितनी भी रचनात्मक प्रेरणाएँ क्यों न ली थीं, परन्तु मण्डलियों के छद्म आचरणों और मुखौटाधारी चरित्रों ने उन्हें झकझोर कर रख दिया था। वे अपने कृतिकार-जीवन में उन्हीं छद्मों और मुखौटों से जूझते रहे। अगर ध्यान दिया जाए, तो उनकी रचनाओं में उनके विद्रोही मन की अभिव्यक्ति अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। सृजन-क्षणों में जब भी उनका विद्रोह तुर्श हुआ, वे अराजक हो जाते, शैली व्यंग्यात्मक हो जाती तथा आदर्शों के सारे झाड़-फ़ानूस

टूटकर बिखर जाते। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की ये ही परिस्थितियाँ थीं, जिनका तीखा विरोध हुआ। आज भी द्विवेदीयुगीन तमाम पत्रिकाओं में इन विरोधों के साक्ष्य अनुपलब्ध नहीं है। विशाल भारत, शिक्षा, मनोरंजन, समालोचक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, चाँद, सुधा जैसी दर्जन भर तद्‌युगीन पत्रिकाओं में 'उग्र' विरोध के साक्ष्य भरे पड़े हैं।

आज बदलते मिलेनियम में यह ज़रूरी नहीं है कि 'उग्र' के अराजक लेखन की मिशालें दी जाएँ और उनके प्रतिवाद में विरोधी दस्तावेज़ों की फ़ाइलें खोली जाएँ। लेकिन उन मनः रचनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ज़रूरी है, जो साहित्य में इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक स्थितियाँ पैदा करती हैं।

शिक्षा-दीक्षा

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' स्कूलों की अल्प शिक्षा द्वारा जीवन की उच्च शिक्षा पाने के बेजोड़ उदाहरण हैं। उन्होंने खुद लिखा था, "शिक्षा-दीक्षा दूर, मेरे सामने तो आँखें खोलते ही जीवन-ग्रन्थ का जो पृष्ठ पड़ा, वह शिक्षा-दीक्षा को चौपट करने वाला था।" (*अपनी ख़बर* पृ. 26)। फिर भी वे चौपट नहीं हुए। जीवन के चौपट-पृष्ठ से भी उन्होंने सृजन-रस चखा। अगर 'उग्र' जीवन के चौपट-पृष्ठ पढ़ने के लिए विवश न हुए होते, तो शायद न इतने बड़े लेखक होते और न सम्पादक।

स्कूलों में अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने की उम्र में 'उग्र' को रामलीला मण्डलियों में जाना पड़ा था। इसे ही उन्होंने चौपट पृष्ठ कहा था। परन्तु तीन वर्ष बाद वे मण्डली-जीवन से ऊब कर चुनार वापस आ गये। मानों नयी परिस्थितियाँ उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। चौदह वर्ष की उम्र में उन्होंने चुनार के चर्च मिशन स्कूल की तीसरी कक्षा में नाम लिखवाया। स्कूल में प्रवेश लेते देर न हुई कि वे 'दुनियादारी, अय्यारी और यारी' में अध्यापकों से भी आगे निकल गये।

कक्षा पाँच पास करके छठी में जाते ही 'उग्र' का स्कूल के उर्दू-फ़ारसी टीचर मौलवी लियाक़त अली से वैचारिक मतभेद हो गया। कक्षा सात में पढ़ते हुए उन्होंने उस मौलवी साहब की शिकायतें उच्च अधिकारियों तक पहुँचाई। इसका परिणाम उनके अनुकूल नहीं रहा। स्कूल से नाम काट दिया गया।

संयोग ऐसा था कि उन्हीं दिनों 'उग्र' को अपने चाचा की लड़की के गौना में सम्मिलित होने के लिए काशी जाना पड़ा। मौक़ा पाकर उन्होंने अपने चाचा से आग्रह किया कि वे इनकी पढ़ाई के लिए काशी में ही कोई व्यवस्था कर दें। चाचा की आमदनी अच्छी थी, दयालु भी थे, उन्होंने बनारस के विख्यात हिन्दू (कालिजिएट) स्कूल की छठी कक्षा में उनका नाम लिखा दिया।

हालाँकि 'उग्र' को चुनार के चर्च मिशन स्कूल से जो 'विद्यालय परित्याग

प्रमाण-पत्र' मिला था, उसमें आचरण 'फ़ेयर' यानी 'अच्छा' लिखा था, परन्तु कालिजिएट स्कूल के तत्कालीन हेडमास्टर कालीप्रसन्न चक्रवर्ती छात्र हितैषी और अत्यन्त उदार व्यवहार के व्यक्ति थे। उन्होंने इनका दाख़िला करने में कोई एतराज़ नहीं किया। 'उग्र' ने बिना किसी व्याघात के छह और सात दर्जे की पढ़ाई पूरी की। यह उनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

जब 'उग्र' कक्षा आठ में पहुँचे, तब उन्हें नियति का एक आघात और सहना पड़ा। उनके चाचा ने उनसे पल्ला झाड़ लिया और एक बार फिर वे आश्रयहीन हो गये। शरण्य की तलाश में वे अपने गाँव, 'जलालपुर माफ़ी' के रामानन्द दुबे के यहाँ पहुँचे। वे ब्राह्मण-वृत्ति के व्यक्ति थे। अच्छी आमदनी न होने पर भी उन्होंने 'उग्र' को अपने साथ महालक्ष्मी मन्दिर में ही रख लिया।

कालिजिएट स्कूल के हेडमास्टर कालीप्रसन्न चक्रवर्ती 'उग्र' की बौद्धिक त्वरा से तो प्रभावित थे ही, साथ ही उनकी विपन्नता पर भी तरस खाते थे। उन्होंने उनकी (उग्र) आर्थिक सहायता के लिए तत्कालीन बनारस के दानवीर बाबू शिव प्रसाद गुप्त के नाम पर सिफ़ारिशी पत्र लिख दिया। इस पत्र को लेकर वे (उग्र) दानवीर गुप्त के घर सेवा-उपवन गये और कृत मनोरथ हुए। इस सन्दर्भ का ज़िक्र करते हुए उन्होंने लिखा था,

> "मैं सेवा उपवन से महीने भर खाने क़ाबिल आटा, दाल, चावल, तेल, नमक और लकड़ी कुछ नक़द लेकर यानि सिर पर लादकर नगवा से महालक्ष्मीजी आया। साल भर इसी तरह मैं सेवा-उपवन के अन्नसत्र से सामग्री सिर पर लादकर ले आता। नंगे पाँव पैदल।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 94)

जब 'उग्र' सातवीं कक्षा पास कर आठवीं में पहुँचे, तब इन्हें स्कूल के हेडमास्टर पद पर गुरु सेवक सिंह उपाध्याय मिले। उन्होंने विद्यार्थियों पर नियन्त्रण का नीरस पंजा कसना शुरू किया। नवागत हेडमास्टर का कठोर नियन्त्रण 'उग्र' को रास नहीं आया। उन्होंने विरोध के लिए तुकबन्दी का हथियार सँभाला। छात्रों और अध्यापकों की एक गोष्ठी में छोड़ ही तो दिया तुकबन्दी का वह व्यंग्य-बाण। छात्रों ने तालियाँ बजाईं, परन्तु अध्यापकों ने विरोध किया। माज़रा संगीन हो गया। दूसरे दिन हेडमास्टर ने उन्हें अपने कमरे में तलब किया और क्षमा-याचना के लिए दबाव डाला। क्षमा-याचना 'उग्र' की प्रकृति में थी ही नहीं। हालाँकि वे निष्कासित तो नहीं हुए, परन्तु वार्षिक परीक्षा में फ़ेल हो गये। फिर तो बनारस छोड़कर चुनार भाग आये। यहीं स्कूली जीवन का अध्याय समाप्त हो गया।

स्कूली जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दू स्कूल बनारस में मामूली छात्र के रूप में दाख़िल हुए थे। उस समय शहरातियों के बीच क़स्बाई अथवा गँवई छात्रों की कोई

ख़ास पूछ नहीं थी। वे 'दीन-हीन' मलीन कपड़े पहन, मुरझाया चेहरा लेकर स्कूल जाया करते थे। उनकी कक्षा में पं. कमलापति त्रिपाठी जैसा महत्त्वपूर्ण छात्र भी पढ़ते थे। भला 'उग्र' को कौन पूछता। लेकिन एक घटना ऐसी घटी, जिसने उन्हें स्कूल के विद्यार्थियों में केन्द्रीय छात्र के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। 'उग्र' ने इस घटना का वर्णन यों किया था–

"उन दिनों प्रधानाध्यापक थे रतिलालजी देसाई महोदय। अतः गाँधी जी का जन्म दिवस स्कूल में अधिक उत्साह से मनाया गया। खचाखच भरे हॉल में सभा हुई थी। उसी सभा में महात्मा जी पर मैंने एक तुकबन्दी (रोला छन्द में) पढ़ी थी। उसमें गाँधी का नाम था, साथ ही विदेशियों के विरुद्ध विचार थे। वह तो राष्ट्रीय भावना से भरी संस्था थी। तालियों की गड़गड़ाहट और दूसरे दिन बेचन पाण्डे हिन्दू स्कूल में 'माननीय कवि'।" यह घटना बेचन पाण्डे के स्कूली जीवन का महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। इसने उन्हें मित्रों की एक उल्लेखनीय मण्डली दी। परिचित हुए पं. कमलापति त्रिपाठी तदनन्तर लक्ष्मी नारायण मिश्र, रामनाथ लाल 'सुमन', मन्मथ नाथ गुप्त, विनोद शंकर व्यास और साथ ही वे पं. काशीपति त्रिपाठी, लाला भगवान दीन, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द और सम्पूर्णानन्द के स्नेह-भाजन भी बने।

जिस समय पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दू स्कूल में पढ़ रहे थे, उस समय बनारस राष्ट्रीयता की प्रखर चेतना का केन्द्र था। यहीं सुमित्रानन्दन पन्त भी पढ़ रहे थे। बनारस के स्कूली कविता-लेखकों की काव्य-रचना प्रतिभा की परख करने के लिए हिन्दू स्कूल के अध्यापकों ने एक प्रतियोगी परीक्षा आयोजित की। अनेक छात्रों ने कविताएँ लिखीं। इस परीक्षा में पन्त जी प्रथम और 'उग्र' जी द्वितीय आये। उनका द्वितीय आना भी वरदान सिद्ध हुआ। सहपाठी कमलापति त्रिपाठी इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्हें अपने घर ले गये और अपने विश्रुत विद्वान बड़े भाई काशीपति त्रिपाठी से परिचय कराया। उन्हीं की सहायता से श्री लक्ष्मीनारायण पुस्तकालय का संचालन शुरू किया गया। वहाँ से 'उग्र' नाम से हस्तलिखित मासिक पत्र निकाला गया। अब बेचन पाण्डे वहाँ के एक स्थायी सदस्य हो गये।

पं. कमलापति त्रिपाठी की अन्तरंगता ने बेचन पाण्डे को एक नया जीवन दिया। वे बनारस के तत्कालीन साहित्यकारों की शृंखला की एक कड़ी के रूप में उभरने लगे। पं. कमलापति त्रिपाठी के परिचय का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए 'उग्र' ने लिखा था,

> "इन्हीं घटनाओं के निकट कभी कमलापति त्रिपाठी से मेरा परिचय हुआ, जो मात्र परिचय ही नहीं, हम दोनों के बीच में ज़बरदस्त मोड़ बन कर रहा था। मेरा ठौर कहाँ, ठिकाना कहाँ; सो, बरसों तक कमलापति त्रिपाठी ही के द्वार पर पड़ा रहता।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 99)

कक्षा आठ में अनुत्तीर्ण होने के बाद

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हिन्दू स्कूल में पढ़ते हुए कक्षा आठ में फ़ेल हो गये थे। यह सन् 1919-1920 का सत्र था। वे चुनार वापस आ गये। परन्तु अपने क्रोधी भाई त्रिदण्डी के डर से कलकत्ता भाग गये। वहीं 'विश्वामित्र' (1916) के संचालक बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल से मुलाक़ात हुई थी। 'विश्वामित्र' के विज्ञापन-विभाग में उनके (उग्र) पड़ोसी भाई विश्वनाथ त्रिपाठी काम करते थे। वे त्रिपाठी जी के साथ कुछ दिनों तक कलकत्ता में रहे। एक महीने के लिए आर. एल. बर्मन एण्ड कम्पनी में नौकरी भी की, परन्तु वेतन नहीं मिला। इसी दरम्यान 4 सितम्बर से लेकर 9 सितम्बर, 1920 का कलकत्ता काँग्रेस अधिवेशन लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। इसमें गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत असहयोग-आन्दोलन का प्रस्ताव पारित हुआ। विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ ये सारी घटनाएँ 'उग्र' भी देख रहे थे। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा था,

> "राष्ट्रीय महासभा के उस क्रान्तिकारी अधिवेशन के दर्शनों ने मेरे मन में जैसे राष्ट्रीय नशा भर दिया था। मुझे लगा बनारस छोड़ राष्ट्रीय रण के इस मौक़े पर कलकत्ता में अकारण ही आ गया। मुझे पुनः बनारस ही लौट जाना चाहिए।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 124)

और वे बनारस ही लौट आये। अपनी राष्ट्रीय भावना का मूल्यांकन किया। मानदण्ड अपनाए गाँधी जी, चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, विपिनचन्द्र पाल, मदन मोहन मालवीय और अध्यक्षता की गरिमा से मण्डित लाला लाजपत राय के राष्ट्रीय विचारों के। हालाँकि वे दूसरे बनारस नहीं लौटे थे, परन्तु इस बार के बनारस ने उन्हें राष्ट्रीय चेतना और विचारोत्तेजक रचना के उच्चासन पर बैठा दिया। इसी प्रेरक बनारस में उन्होंने गाँधी जी का दक्षिण चरण पकड़ा था, 'बेचन' से 'उग्र' बने थे, क्रान्तिकारी रचनाएँ की थीं, जिनका संग्रह शचीन्द्रनाथ सान्याल और राजेन्द्र लाहड़ी ने ललकपूर्वक किया था, राजनीतिक डाका डालने की योजना में शरीक हुए थे और बाबूराव विष्णुराव पराड़कर की कृपा से 'आज' में छपने लगे थे।

2

जीवन-दर्शन और प्रेरणा

सन् 1920 में महात्मा गाँधी भारत में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के संवाहक महापुरुष बन गये थे। वे देश के मुक्ति-संघर्ष, साहित्य-सृजन और पत्रकारिता को नयी प्रेरणा देने में लग गये थे। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' पर उनका जादू सन् 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में चला था। उन्होंने देखा कि सभापति के आसन पर बैठे हुए लाला लाजपत राय तक गाँधी जी को पंखा झल रहे थे। प्रेसिडेण्ट लाजपत और चित्तरंजनदास के विरोध के बावजूद गाँधी जी का असहयोग-प्रस्ताव भारी मतों से स्वीकार कर लिया गया था। इस संयोगात् घटना ने गाँधी जी को 'उग्र' की राष्ट्रीय विचारधाराओं और रचनाओं का आदर्श पात्र बना दिया था। लगभग सन् 1947 तक वे इसी पात्र की व्यापक तलाश करते, इसी के व्यक्तित्व की गुत्थियाँ सुलझाते और इसी के दर्शन को अपनी सृजन-यात्रा का संबल बनाते रहे थे।

सन् 1921 के प्रारम्भिक महीने में गाँधी जी ख़िलाफ़त आन्दोलन के सिलसिले में बनारस गये। टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज के दुमंज़िले पर उनका भाषण हुआ। जब वे गोष्ठी-कक्ष से बाहर निकले, तब पूर्व योजना के तहत 'उग्र' ने उनका दाहिना चरण तथा कमलापति त्रिपाठी ने बायाँ चरण पकड़ लिया। 'गाँधी जी चमक कर शान्त रह गये थे।' परन्तु गाँधी जी के चरण में 'उग्र' को जीवन की चमकदार थाती मिल गयी थी। उन्होंने गाँधी जी के दाहिने चरण से 'गति' और बाएँ चरण से 'वस्तु' ली तथा नव उपलब्ध गति और वस्तु को मिलाकर प्रभूत साहित्य की रचना की।

बनारस के प्रथम असहयोग-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते हुए पाण्डेय बेचन शर्मा भी जेल गये। तत्काल बाद पं. कमलापति त्रिपाठी भी। दोनों एक ही बैरक में समभाव के साथ कुछ दिनों के लिए जेल-जीवन के भी सक्रिय अनुभवी और साक्षी बने।

असहयोग-आन्दोलन में 'उग्र' की सक्रियता की चर्चा करते हुए विनोद शंकर व्यास ने लिखा था, "असहयोग-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर 'उग्र' काशी में विख्यात हुए। उन्होंने स्कूली शिक्षा का बहिष्कार कर दिया और आन्दोलन के कार्य में रात-दिन लगे रहे। गाँवों में भी वे आन्दोलन का प्रचार करने जाया करते थे।

जनता की भाषा और लय में अनेक जन-काव्य की रचना की। जनकाव्यों में मिर्जापुरी बोली की प्रधानता थी। (दिन रात, पृ. 79)

परिव्राजक की प्रजा (पृ. 107) में शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी 'उग्र' की सक्रियता, भाषण-कला और इतिहास-ज्ञान की भरपूर प्रशंसा की थी।

यह स्पष्ट था कि जो अध्येता गाँधी के मुक्ति-आन्दोलनों ओर उनके दर्शन से भिज्ञ नहीं होगा, वह 'उग्र' साहित्य में निहित अन्तः प्रसंगों और उसकी आत्मा की धड़कनों को नहीं जान सकेगा। हालाँकि उग्र-साहित्य में बग़ावत के तमाम आह्वान और क्रान्ति के अराजक क्षण भी विद्यमान हैं, परन्तु विद्रोह के इन क्षणों में भी गाँधी-दर्शन का चेहरा झलक मारता रहता है।

क्रान्तिकारियों के दल में

'अरी भाषा स्फुलिंगवती बन' के मसि-लेखनी-आह्वान के साथ पाण्डेय बेचन शर्मा सृजन के क्षेत्र में उतरे थे। सन् 1921 में जेल से आने के बाद उनकी 'कामना' शीर्षक कविता 'आज' में छपी "भयंकर ज्वालाएँ जाग उठें, सब ओर आग की हो जाय भरमार!" (*अपनी ख़बर* पृ. 111)। पूरी कविता आग बरसानेवाली थी। हिन्दू स्कूल के छात्र-जीवन में लिखी 'शहीद मैक्स्विनी' अथवा 'चलो आज गाँधी जयन्ती मनाएँ' जैसी कविताओं में भी राष्ट्रीय भावों की चिंगारियाँ फूट रही थीं। स्वाभाविक था कि उस समय के क्रान्तिकारियों का ध्यान आकृष्ट होता। तत्कालीन बनारस क्रान्तिकारियों का अड्डा था। शचीन्द्रनाथ और राजेन्द्र लाहिड़ी बड़ी तीख़ी नज़र से बनारस का स्थूल और सूक्ष्म दोनों देख रहे थे। मन्मथनाथ गुप्त 'उग्र' के कक्षा मित्र ही थे। ऐसा सम्भव नहीं था कि ये कविताएँ उनकी आँखों से ओझल रह जातीं। यहाँ तक कि पराड़कर जी को भी इन कविताओं की गर्मी से सुख मिलता। 'उग्र' ने स्वयं लिखा था,

> "मेरी लेखनी में अंग्रेज़ी राज के प्रति घोर घृणा तथा क्रान्तिकारियों के लिए तरल महामोह था।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 108)

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की लेखनी से चिंगारियाँ उड़ते देखकर शचीन्द्रनाथ सान्याल ने उनका एक संकलन तैयार किया। भारतीय युवकों में क्रान्ति का उद्वेलन पैदा करने के लिए उग्र-कविताओं की निहायत ज़रूरत थी। सान्याल ने संकलन तो तैयार ही किया, साथ ही 'उग्र' की वास्तविक जानकारी के लिए राजेन्द्र लाहिड़ी को उनके पास भेजा।

लाहिड़ी इस गठीले युवक 'उग्र' से प्रभावित हुए। तीन अन्य बंगाली युवकों के साथ उन्हें भी बनारस से इलाहाबाद बुलाया गया। किसी षड्यन्त्रकारी उपद्रव में शामिल होना प्राणों को हथेली पर रखकर। 'उग्र' अन्दर से बेहद डरे हुए थे।

संयोग काम आया। चौबीस घण्टे की प्रतीक्षा के बाद भी क्रान्ति के अग्रणी पुरुष योगेश बाबू किन्हीं कारणों से न आ सके। 'जान बची लाखों पाए' की ख़ुशी में जब वे बनारस लौट रहे थे, रास्ते में योगेश बाबू मिले। उन्होंने तीनों युवकों को इलाहाबाद लौट चलने का निर्देश दिया, परन्तु 'उग्र' बहाना बनाकर बनारस चले आये। हालाँकि योगेश बाबू इनको घृणा भरी नज़रों से देखने लगे, परन्तु सान्याल बाबू उनकी लेखनी की अग्नि से ही सन्तुष्ट थे, इसलिए वे उनका सम्मान आख़िरी क्षण तक करते रहे।

'बेचन' से 'उग्र' बनने की कहानी

'बेचन' नामकरण अन्ध-परम्परा और दुर्नियति की क्रूर विडम्बनाओं ने मिलकर किया था। 'उग्र' नाम साम्राज्यवादी सत्ता के विरुद्ध पूरे देश में उद्वेलित लहरों और नवजागरण के हुँकारों ने दिया था। 'बेचन' ब-नाम 'उग्र' द्विवेदीयुगीन भारतीय परिस्थितियों को समझने का एक पूरा दस्तावेज़ है, एक ऐसा दस्तावेज़, जिसमें परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द्व का इतिहास सुरक्षित है। इस द्वन्द्व में 'उग्र' की विजय हुई थी। अगर ग़ौर किया जाए तो 'बेचन' भारत के पिछड़े इलाक़ों का प्रतीक था और 'उग्र' राष्ट्रीय चेतना का वर्तमान। कमोबेश 'धनपत राय' और 'प्रेमचन्द' तथा 'सुर्जकुमार तेवारी' और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के नामों में भी यही भावना निहित थी।

'उग्र' जीवन पर्यन्त अपने 'बेचन' नाम की मजबूरियों से लड़ते रहे थे। *अपनी ख़बर* में बार-बार उन्होंने 'बेचन' नाम के कारण मन में उठी तिलमिलाहटों का उल्लेख किया था। मसलन

> " 'जन्मजात बिका' का बिल्ला जैसा नाम तौक़ की तरह गले मढ़ा गया—बेचन। 'बेचन' नाम ऐसा नहीं, जिसे ओमप्रकाश की तरह भारत प्रचलित कहा जाए। आज जीवन के 60वें साल में मैं साधिकार कह सकता हूँ कि मुझे ही नहीं, मौत को भी यह नाम नापसन्द है।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 18)

'उग्र' सन् 1919 तक 'बेचन' ही बने रहे। मिर्ज़ापुर में इसके पहले 'प्रेमघन' बन चुके थे 'चौधरी बदरी नारायण उपाध्याय' तथा 'बंगमहिला' बन चुकी थीं—'राजेन्द्र बाला घोष'। परन्तु उन लोगों के अपने-अपने कारण थे। 'उग्र' के केवल अपने ही कारण नहीं थे, बल्कि राष्ट्रीय कारण भी थे। इस सन्दर्भ में उन्होंने खुद ही लिखा था,

> "आज से चालीस वर्ष पूर्व राष्ट्रभक्त लेखक ऐसे कर्कश उपनाम इसलिए चुना करते थे कि बलवान ब्रिटिश साम्राज्य के नृशंस शासक नाम से ही दहल जाएँ। शायद शक्तिहीनता छिपाने के लिए लोग प्रचण्ड नामोपनाम चुना करते थे। (*अपनी ख़बर,* पृ. 108)

अस्पष्ट नहीं रह गया कि सन् 1919 में 'बेचन' का 'उग्र' नाम राष्ट्रीय शक्ति का प्रतीक था। काल चेतना का रूपान्तरण। अगर युग की बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों का प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण किया जाए, तो कहना न होगा कि 'बेचन' बिके हुए 'राष्ट्र' का और 'उग्र' मुक्ति के लिए छटपटाते 'राष्ट्र' का द्योतक था।

आज ज़रूरी है कि किसी लेखक के व्यक्तित्व की प्रस्तुति में इन मिथकों पर भी विचार किया जाए। आज यह प्रश्न उठाना असंगत न होगा कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को लेखकीय व्यक्तित्व किसने दिया 'बेचन' ने या 'उग्र' ने? अगर उनके जीवन के सारे बदलावों को सूक्ष्मतापूर्वक समझा जाए, तो कहना पड़ेगा कि वे न 'बेचन' में सम्पूर्ण थे और न ही 'उग्र' में। उनके पूरे साहित्य में 'बेचन' तथा 'उग्र' का मिला-जुला प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनकी रचनाओं में 'बेचन' और 'उग्र' वर्ग-बोध के रूप में उभरे हैं। नाम या उपनाम के रूप में नहीं। उदाहरण के लिए 'बलात्कार' का 'कालीचरण' 'बेचन' था, परन्तु गंगा भिखारिन 'उग्र' थी। *चन्द हसीनों के ख़तूत* का तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम समाज 'बेचन' था, परन्तु नरगिस 'उग्र' थी। *बुधुआ की बेटी* का घनश्याम 'बेचन' था, परन्तु रधिया भंगिन 'उग्र' थी। शराबी का पन्नालाल 'बेचन' था, परन्तु नायिका जवाहर 'उग्र' थी। इसी प्रकार 'सरकार तुम्हारी आँखों में' का मदन सिंह जू देव 'बेचन' था लेकिन फ़िरोज़ी 'उग्र' थी।

वस्तुतः पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का सारा साहित्य 'उग्र-प्रवृत्ति' और 'बेचन-प्रवृत्ति' के द्वन्द्व का साहित्य है। उन्होंने प्रायः पुरुषवादी समाज को 'बेचन-प्रवृति' के प्रतिनिधि और नव जाग्रत नारी-समाज को 'उग्र-प्रवृत्ति' के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया था।

'उग्र' के पाँच श्रद्धेय गुरु

'उग्र' के पाँच गुरुओं के सन्दर्भ में उन्हीं का कथन अधिक प्रामाणिक कहा जाना चाहिए। उन्होंने लिखा था,

> "अरसा हुआ वाराणसी के दैनिक अख़बार 'आज' में आदरणीय पं. कृष्णदत्त पालीवाल की चर्चा करते हुए मैंने लिखा था कि मेरे पाँच गुरु हैं; जिनमें एक पालीवाल जी भी हैं।" (*अपनी ख़बर,* पृ. 97)

सन् 1960 में 'उग्र' ने जिस लेख की चर्चा की थी वह 17 जनवरी 1948 के 'आज' में निकला था। इसमें उन्होंने अपने बड़े भाई उमाचरण 'त्रिदण्डी', काशीपति त्रिपाठी, लाला भगवान 'दीन', बाबूराव विष्णुराव पराड़कर और कृष्णदत्त पालीवाल को अपने गुरुओं के रूप में याद किया था। इसमें त्रिदण्डी को छोड़कर तीन व्यक्ति बनारस के थे। हालाँकि इनमें से किसी ने भी न उन्हें गुरु-मन्त्र दिया था और न ही गुरु आसन पर बैठकर साहित्य रचना करने का पाठ पढ़ाया था, परन्तु

इन सभी लोगों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कुछ ऐसी प्रेरणाएँ दी थीं अथवा कुछ ऐसी परिस्थितियाँ सृजित की थीं, जिनके कारण 'उग्र' ने इन्हें गुरु-भाव से संवरित किया था। इस दाय को स्वीकार करते हुए 'उग्र' ने ही कहा था,

> "त्रिदण्डी जी से मुझे लिखने का शौक मिला। काशीपति जी से 'सहृदयता', 'दीन' जी से 'दृष्टि', पराड़कर जी से 'राह' और पालीवाल जी से 'उत्साह'।" (*व्यक्तिगत*, पृ. 27)

'उग्र' की इस स्वीकृति से अस्पष्ट नहीं रह जाता कि त्रिदण्डी, काशीपति और पालीवाल उनके रचनात्मक जीवन के महज़ निमित्त कारण थे, परन्तु लाला भगवान 'दीन' और पराड़कर जी उनके सृजन के लिए उपादान कारण बने। कोई भी व्यक्ति 'दृष्टि' और 'राह' (मार्ग) के बिना लेखक बन ही नहीं सकता। 52 वर्ष पहले 'उग्र' ने जिसे 'दृष्टि' कहा था, आज उसे विचारधारा कहते हैं। उन्होंने जिसे 'राह' कहा था, उसे ही कुन्तक ने मार्ग (रीति) कहा था। साहित्य-सृजन के लिए 'दृष्टि' और 'राह' दोनों की समान उपादेयता आज की अपेक्षा उग्र-काल में बहुत अधिक थी। इसलिए 'उग्र' के गुरु-रूप में 'दीन' और 'पराड़कर' दोनों की भूमिकाएँ विचारणीय हो जाती हैं।

अपनी ख़बर में 'उग्र' ने लाला भगवानदीन और बाबूराव विष्णुराव पराड़कर पर एक-एक अध्याय दिया था। यों तो एक अध्याय पं. कमलापति त्रिपाठी पर भी दिया गया था, लेकिन गुरु रूप में नहीं, मित्र रूप में। त्रिपाठी जी 'उग्र' से छह महीने छोटे थे। इसलिए वे (उग्र) उन्हें हमेशा छोटे ही मानते रहे, केवल छोटे ही नहीं, बल्कि अनुयायी भी। 'उग्र' को लगता रहा कि उन्होंने ही त्रिपाठी जी को देश में उद्वेलित राष्ट्रीय विचारधारा से जोड़ा था। एक मार्गदर्शी के रूप में उन्हें साहित्य और पत्रकारिता से जोड़ा था। कुछ दम्भपूर्ण शैली में इसकी अभिव्यक्ति करते हुए उन्होंने लिखा था,

> "लेकिन जेल तो मैं ही तुम्हें ले गया। अख़बारनवीसी की तरफ़ तो मैं ही तुम्हें ले गया। मतलब महज़ यह कि तुम्हारे शुभ में मेरा अनुराग आज भी है। (*अपनी ख़बर*, पृ. 121)

'उग्र' और लाला भगवान 'दीन'

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' बनारस में रहकर आन्दोलनात्मक और रचनात्मक अवसरों की तलाश में निरन्तर लगे थे। इसी तलाश के क्रम में वे लाला भगवान 'दीन' के सम्पर्क में आये। यह उनके लिए बड़ा अवसर था, जो कमलापति त्रिपाठी के माध्यम से प्राप्त हुआ था। सन् 1921 में लाला भगवान 'दीन' का कृपा-पात्र बनना साधारण अवसर नहीं था। 'दीन' बनारस के बौद्धिक जगत के सम्मानित

व्यक्तित्व थे। वे साहित्यिक मासिक 'लक्ष्मी' के सम्पादक थे और *हिन्दी-शब्दसागर* (कोश) के सम्पादक-मण्डल में थे। वे एक अध्यापक के रूप में सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रथम पुरुष थे, अच्छे कवि और आलोचक थे, उर्दू की तर्ज़ पर लिखी उनकी वीर रस की कविताओं ने उन्हें हिन्दी-कविता के नये शैलीकार के रूप में काफ़ी ख्याति दिलाई थी। रचनात्मक क्षेत्र में मठ बनाने और उसमें शिष्यों को दीक्षित करने में भी वे कुशल थे। अगर बारीकियों के साथ 'उग्र' के रचनात्मक व्यक्तित्व की जाँच की जाए, तो उसमें लाला भगवान 'दीन' क़दम-क़दम पर झलक मारते दिख जाएँगे।

लाला भगवान 'दीन' 'उग्र' की रचना-यात्रा के प्रथम निर्देशक थे। उन्होंने बड़े आभार के साथ इस सत्य को स्वीकार किया था। पं. कमलापति त्रिपाठी के यहाँ रहते हुए 'उग्र' ने *ध्रुव धारणा* शीर्षक से एक खण्ड काव्य लिखा था। जब वे इसको लेकर प्रकाशक के यहाँ गये, तब उसने इसकी त्रुटियों की ओर संकेत करते हुए संशोधन की आवश्यकता समझाई। 'उग्र' जगन्नाथ शर्मा के बड़े भाई चण्डिका प्रसाद शर्मा के साथ 'दीन' जी के घर गये। कवि शिक्षा के महापुरुष 'दीन' ने उदारतापूर्वक कई दिनों तक परिश्रमपूर्वक 'उग्र' की प्रथम कृति को प्रकाशन योग्य बना दिया था। 'उग्र' के लिए 'दीन' के गुरुत्व का यह प्रथम चरण था।

हालाँकि 'उग्र' आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब' और कालिका प्रसाद की तरह 'दीन' पाठशाला के पूर्णकालिक शिष्य नहीं थे, परन्तु उन्होंने अपने ऊपर 'दीन' के गुरुत्व के प्रभाव को सहज रूप से स्वीकार किया था। उन्होंने लिखा था,

> "मुझमें यदि कुछ प्रतिभा थी तो उसे लाला जी के मात्र आशीर्वाद का पोष प्राप्त हुआ। पढ़ा वह मुझे न पाए।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 101)

'उग्र' ने जिस कृति द्वारा अपनी रचनात्मक पहचान बनाई थी, वह था एक नाटक *महात्मा ईसा* और इसका संशोधन भी लाला जी द्वारा ही किया गया था। इन्हीं की कृपा से इसका पुनर्वाचन और सम्मति लेखन प्रेमचन्द ने किया था। सम्पूर्णानन्द ने भी अपनी सम्मति व्यक्त की थी, लाला भगवान 'दीन' के स्कूल से सम्बद्ध होने के कारण ही। 'अभ्युदय' के सम्पादक कृष्णकान्त मालवीय ने कहा था, "इनमें जो लेखक है वह असाधारण है।" 'दीन' ने 'उग्र' की असाधारणता का संकेत *महात्मा ईसा* की भूमिका लिखने के दरम्यान पहले ही कर दिया था।

अपनी ख़बर (1960) लिखने से छह वर्ष पहले 'उग्र' ने एक संस्मरण-ग्रन्थ *व्यक्तिगत* (1954) लिखा था। इसमें लाला भगवान 'दीन' के प्रति न तो प्रशंसात्मक अभिव्यक्ति की थी और न ही उनकी देन का प्रत्यक्ष प्रभाव स्वीकार किया था। संस्मरण के क्रम में यह भी लिखा था, 'दीन' जी ने मुझे कुछ भी नहीं सिखलाया। पात्रता ही नहीं थी मेरी उनसे कुछ सीखने की, सो मैं केवल दरबार करता था। वह

समझदारों को भक्ति विभोर भाव से *विनयपत्रिका* पढ़ाते। मैं सुनता था पर उसके सुनने से ही मेरी इकाई की क़ीमत दस गुनी बढ़ गयी। (पृ. 27, 28)

इकाई की क़ीमत बढ़ाने के सन्दर्भ में 'उग्र' ने स्वीकार किया था कि उन्होंने 'प्रताप' (कानपुर) द्वारा प्रायोजित राष्ट्रीय-गान-रचना प्रतियोगिता में भाग 'दीन' जी को देखकर ही लिया था। प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप इन्हें इक्यावन रुपये का पुरस्कार तो मिला ही, सृजन-विश्वास की अपूर्व थाती भी मिली थी।

हालाँकि प्रतियोगिता द्वारा एक हज़ार रुपये का घोषित पुरस्कार किसी को नहीं मिला था, परन्तु प्रशंसित कविताओं में 'उग्र' की भी कविता थी। अन्य कवि थे अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शंकर शर्मा, शिवराम शर्मा 'रमेश'। ये तीनों अवस्था में प्रवर थे, 'सरस्वती' में लगातार प्रकाशित होने के कारण अत्यन्त विश्रुत और हिन्दी-जगत के स्थापित कवि थे। इनके साथ चौथा स्थान पाना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। इस प्रतियोगिता में 'दीन' की कविता को कोई स्थान नहीं मिल सका था। थोड़ा व्यंग्य और थोड़ा अहं व्यक्त करते हुए 'उग्र' ने लिखा था,

> "लाला जी की रचना रसज्ञों को स्पर्श न कर पाई। मेरा नाम बड़े-बड़ों के साथ विज्ञापन में आया। इस वाक़या से गुरु गुड़ ही रहते हैं, पर चेले के चीनी बन चलने की चाशनी में तार-पर-तार पड़ने लगते हैं।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 104)

प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप 'उग्र' द्वारा आत्मगौरव प्राप्त करने का एक दूसरा कारण यह भी था कि निर्णायक मण्डल के सातों सदस्य उस युग के साहित्य और पत्रकारिता-जगत के महारथी थे। इनके नाम थे—शुकदेव बिहारी मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', श्यामसुन्दर दास, कामता प्रसाद गुरु, रामदास गौड़, बदरीनाथ भट्ट और दशरथ प्रसाद द्विवेदी।

सम्भवतः दशरथ प्रसाद द्विवेदी को 'उग्र' की कविता सबसे अधिक अच्छी लगी थी। उन्होंने जिन कविताओं के लिए विशेष 'भेंट' देने की संस्तुति की थी, उनमें 'उग्र' सबसे आगे थे। इसीलिए आयोजक बेणी माधव खन्ना ने इन्हें 251 रुपये का विशेष पुरस्कार दिया था और यह भी कहना शायद सच हो कि इसी प्रतियोगिता में 'उग्र' की रचनात्मक क्षमता देखकर दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने साल भर बाद इन्हें अपने राष्ट्रीय पत्र 'स्वदेश' (गोरखपुर) का सहायक सम्पादक बनाया हो।

'उग्र' ने लाला भगवान दीन के सन्दर्भ में दो अन्तर्विरोधी टिप्पणियाँ लगाई थीं। एक टिप्पणी में उन्होंने कहा कि दीन जी से उन्हें 'दृष्टि' मिली थी, परन्तु दूसरी में लिखा, "दीन जी ने मुझे कुछ भी नहीं सिखलाया।" अगर 'दीन' जी से उन्हें सृजन-दृष्टि मिल गयी थी, तो यह एक ऐसी उपलब्धि थी, जिसकी तुलना में 'सिखलाने' का कोई मूल्य हो ही नहीं सकता।

बहरहाल, 'उग्र' द्वारा दीन जी को गुरु-रूप में याद किया जाना अपने आप में काफ़ी महत्त्वपूर्ण था।

'उग्र' के तीसरे गुरु—बाबूराव विष्णुराव पराड़कर

'उग्र' ने लिखा था कि पराड़कर जी से उन्हें 'राह' मिली थी। वे पराड़कर जी से प्राप्त रचना की राह पर चलकर जल्दी ही विख्यात हो गये थे। पराड़कर जी विचार और लेखन दोनों में क्रान्तिकारी थे। 'हितवार्ता' (1907) और साल भर बाद 'भारत मित्र' में सहायक सम्पादक का दायित्व निभाते हुए उन्होंने हिन्दी के मानक ज्ञान का ही अर्जन नहीं किया था, बल्कि भाषाई भंगिमा से भी परिचित हो गये थे। 'हितवार्ता' और 'भारत मित्र' दोनों में उन्होंने गोविन्द नारायण मिश्र को लगातार प्रकाशित किया था। सन् 1920 में 'आज' (बनारस) का सम्पादन-सूत्र सम्हालते ही उन्हें 'उग्र' मिले। राष्ट्रीय विचारधाराओं से लबरेज़ उनकी रचनात्मक क्षमता और देश की मुक्ति के लिए सम्पूर्ण उत्सर्ग-भाव को देखकर पराड़कर जी मुग्ध हो गये। इन्हीं के प्रयास से 'आज' (दैनिक) 'उग्र' का ऐसा प्रकाशन-प्रतिष्ठान बना कि वे केवल तद्‌युगीन लेखकों में ही नहीं बल्कि क्रान्तिकारियों और मुक्ति-आन्दोलन के सैनिकों के बीच भी प्रशंसा के पात्र बने।

'आज' में 'उग्र' पराड़कर जी की प्रथम साहित्यिक उपलब्धि थे। उन्होंने 'उग्र' को आकार दिया। यह आकार तद्‌युगीन राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक परिवर्तनों की आकांक्षा के अनुरूप था। हालाँकि वे (पराड़कर) बेचन की उग्रता का पैनापन कुन्द नहीं करना चाहते थे, परन्तु कुल मिलाकर वे एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान के वेतनभोगी कार्यकर्ता ही थे। इसलिए उन्होंने अपनी नौकरी को सुरक्षित रखते हुए 'उग्र' को प्रकाशित करना शुरू किया। इस सन्दर्भ में 'उग्र' ने स्वयं लिखा था,

> "उन्होंने (पराड़कर जी) बे-बोले ही मानों मुझे गोद ले लिया। सारे-साल मण्डल की कानाफूसी एक तरफ़ रख अपना काम छोड़, घण्टों तक मेरी कहानियों को व्याकरण की पटरी पर लाते, ग़लत-बयानियाँ सुधारते, बदशक्ल शब्द या मुहावरे काट-छाँटकर मेरी रचना को दिव्य द्विजत्व दिया करते थे।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 109)

देखा जा सकता है कि पराड़कर जी के कारण 'उग्र' की रचना का पुनर्जन्म (द्विजत्व) होता था। परन्तु पराड़कर जी रचना में संशोधन करते हुए इस बात का हमेशा ध्यान रखते कि रचना की आत्मा को कोई चोट न पहुँचे। पराड़कर जी उस रचना-रूपी बिच्छू को सुधारते यों कि बिच्छू का रूप तो बदल जाता, किन्तु शब्दों के मारक डंक और विष बने के बने रहते। (*अपनी ख़बर*, पृ. 109)

'उग्र' को प्रकाशित करने के कारण पराड़कर जी को तमाम चेतावनियाँ मिलतीं, लेकिन वे उन्हें छापते रहते। इस प्रकार तरह-तरह के द्वन्द्वों से गुज़रते हुए उन्होंने कुछ ही वर्षों के भीतर 'उग्र' को रचनाकार की ऐसी हैसियत दे दी कि वे

एक साहित्यकार के रूप में अपने ख़ुद के पैरों पर खड़े हो गये। यहाँ यह भी जानना ज़रूरी है कि पराड़कर जी के कारण ही उन्हें भाषा में व्यंग्य-शक्ति की पहचान हुई थी। वे द्विवेदी युग के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार बने। पराड़कर जी के निर्देशन में ही वे राष्ट्रवादी कविताएँ और कहानियाँ लिखने के लिए बेचन पाण्डेय से 'उग्र' बने थे तथा व्यंग्य-लेखन के लिए 'उग्र' से 'अष्टावक्र' बने थे।

यह एक मान्य तथ्य है कि लेखक को 'पब्लिक' बनाने में पराड़कर जी बेजोड़ सम्पादक थे। इस बेजोड़ होने का पहला प्रयोग उन्होंने बेचन पाण्डे पर किया था। ध्यान दिया जाए तो बेचन पाण्डे पराड़कर जी की और स्वयं पराड़कर जी बेचन पाण्डे की प्रयोगशाला थे। पराड़कर-प्रयोगशाला में खरे उतरने के बाद ही उनकी रचनाएँ 'मर्यादा', 'प्रभा', 'स्वदेश', 'मतवाला', 'चाँद', 'सुधा', 'सरस्वती', 'प्रेम', 'वीणा' और 'साहित्य-सन्देश' आदि अनेक पत्रिकाओं में ससम्मान छपने लगीं।

'उग्र' के शेष गुरु

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने बड़े भाई उमाचरण 'त्रिदण्डी--पं. कमलापति त्रिपाठी के बड़े भाई काशीपति त्रिपाठी और कृष्णदत्त पालीवाल को भी अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया था।

उमाचरण 'त्रिदण्डी' 'उग्र' के प्रथम गुरु थे, एक ऐसे गुरु, जिन्हें उन्होंने श्रद्धा की दृष्टि से कभी नहीं देखा। साठ वर्ष की उम्र बीत जाने पर भी उन्हें 'ग़ैर-ज़िम्मेदार, बदमाश, बदचलन और बिलकुल बद व्यक्ति' कहना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। (*अपनी ख़बर*, पृ. 97) फिर भी वे 'उग्र' के प्रेरणा गुरु तो बने ही। जब वे 'क ख ग' लिखना नहीं जानते थे, तब 'त्रिदण्डी' साहित्यिक पत्रिकाएँ पढ़ते थे, स्वयं लिखते भी थे और समस्या-पूर्ति की पत्रिकाओं—'रसिक रहस्य' तथा 'प्रियंवदा' आदि में छपते भी थे। उन्हें बाङ्ला भाषा का भी ज्ञान था। वे 'उग्र' के सामने बैठकर कवित्त रचते, लेख लिखते। फिर तो यह स्वाभाविक था कि 'उग्र' पर इनके लेखन का प्रभाव पड़ता। इनको देखकर ही 'उग्र' में लिखने का शौक़ जगा और इस प्रकार वे उनके अप्रत्यक्ष गुरु बने।

'उग्र' ने काशीपति त्रिपाठी को भी गुरु-रूप में आदर दिया था। काशीपति ने बड़ी उदारतापूर्वक उन्हें अपने घर में रहने का स्थान और लिखने का माहौल प्रदान किया था। यह सहृदयता ही 'उग्र' के लिए गुरु बनी। उन्होंने अपने इस सहृदय गुरु की प्रशंसा करते हुए लिखा था,

> "पं. काशीपति त्रिपाठी सारे संसार की सुगन्ध अपनी नाभि में रखकर भी वन, तरु, लता और बिल की खाक छाननेवाले कस्तूरी मृग हैं, जिनसे मेरे जैसे आधे दर्ज़न छोकरे मस्त, कला परस्त बने होंगे, जिनमें कमलापति, रामनाथ

लाल 'सुमन', लक्ष्मी नारायण मिश्र नाटककार और जगन्नाथ शर्मा 'प्रोफ़ेसर' मुख्य हैं।" (*व्यक्तिगत,* पृ. 27-28)

'उग्र' के एक गुरु कृष्णदत्त पालीवाल भी थे, जिनसे इनकी मुलाक़ात तब हुई थी, जब उन्होंने (पालीवाल) 'उग्र' की *ध्रुव-धारणा* का प्रकाशन 'प्रभा' में किया था। 'प्रभा' (1913) के प्रथम सम्पादक थे कालूराम गंगाडे और माखनलाल चतुर्वेदी। तब यह खण्डवा से प्रकाशित होती थी। परन्तु सन् 1919 में यह कानपुर में आ गयी और गणेश शंकर विद्यार्थी के साथ कृष्णदत्त पालीवाल 'प्रभा' के सम्पादक बने।

जब पालीवाल जी ने 'उग्र' की रचना *ध्रुव-धारणा* का प्रकाशन (दिसम्बर 1921) किया, तब उनके उत्साहवर्धन के लिए एक लम्बा पत्र लिखा। साथ ही 28 रुपये का ऑनरेरियम भी दिया। उनका उत्साहवर्धक पत्र 'उग्र' को गुरु-स्वरूप दिखलायी पड़ा। सन् 1923 के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, कानपुर में उनकी पहली मुलाक़ात पालीवाल जी से हुई। गुरुत्व का सम्बन्ध दृढ़तर हो गया।

इन पाँच गुरुओं के अलावा 'उग्र' जी को रतिलाल जी देसाई, साँवल जी नागर और मुंशी हरिहर नाथ से भी कम उत्साहवर्धन नहीं मिला था। आगे चलकर उनके शिक्षा-मित्र रामनाथ 'सुमन' ने भी इनकी रचनात्मक तरफ़दारी करके दूसरों के आक्रमणों को अपने ऊपर झेल लिया था।

'आज' (दैनिक) से 'स्वदेश' (साप्ताहिक) तक की यात्रा

'आज' और 'उग्र' के सम्बन्धों के सन्दर्भ में कबीर की एक साखी 'गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट'—बेहद प्रासंगिक कही जानी चाहिए। प्रारम्भिक स्तर पर 'आज' ने ही 'उग्र' के लेखकीय रूप को युगान्तरकारी आकार दिया था। आकारदाता थे 'आज' के सम्पादक बाबूराव विष्णुराव पराड़कर।

पराड़कर जी को गोविन्द नारायण मिश्र के सम्पर्क में रहते हुए व्याकरण के मानक सिद्धान्तों की जो थाती मिली थी, वह 'आज' के काम में तो आई ही, 'उग्र' के भाषा-विन्यास में भी उपयोगी साबित हुई। 'आज' से लेखकीय रिश्ता बनने से पहले 'उग्र' की लगभग एक दर्ज़न कविताएँ 'स्वदेश' में छप चुकी थीं, परन्तु 'स्वदेश' के सम्पादक दशरथ प्रसाद द्विवेदी अथवा सहायक बाबू रघुपति सहाय, बी. ए. (फ़िराक़) ने उनमें कोई भी भाषा-परिष्कार करने की भूमिका नहीं निभाई थी। उदाहरण के तौर पर पाण्डेय बेचन शर्मा की एक कविता कृष्ण का 'आह्वान' करते हुए 'स्वदेश' (11 अगस्त, 1919 पृ. 7) में यों प्रकाशित हुई—'ओ! आ जा; आ जा; विश्व-मुक्तिदा आ जा! आबद्धों को उद्धार; युक्तिदा आ जा!' अथवा बिना शीर्षक के एक कविता, 'अनेकों सदियों की परवशा, जननि भारत की देखो दशा' (स्वदेश, 8 अगस्त, 1920 पृ. 15)।

अगर इन्हीं कविताओं को पराड़कर जी प्रकाशित करते तो 'कृष्ण' के लिए 'मुक्तिदा-युक्तिदा' विशेषण अथवा सदियों के लिए 'अनेकों' जैसे प्रयोग न जाने देते। हालाँकि 'उग्र' 'आज' से पहले 'स्वदेश' में छपने लगे थे, परन्तु उनके भाषिक प्रयोगों का संस्कार 'आज' में ही हुआ था।

हिन्दू स्कूल में पढ़ते हुए 'उग्र' ने शहीद मैक्स्विनी पर एक लम्बी कविता लिखी थी। स्कूल के हिन्दी अध्यापक उस कविता के राष्ट्रीय भाव से प्रभावित होकर उन्हें 'आज' कार्यालय ले गये। उन्हीं के सुझाव पर बाबू शिवप्रसाद गुप्त और बाबू श्रीप्रकाश जी की उपस्थिति में उन्होंने (उग्र) कविता पढ़ी। रंग जम गया और दूसरे ही दिन कविता प्रकाशित हो गयी। 'आज' में उनकी यह प्रथम रचना थी। इसने 'उग्र' को लेखकीय प्रोत्साहन तो दिया ही साथ ही राष्ट्रीय विचारधारा से परिपूर्ण एक प्रकाशन-प्रतिष्ठान से जोड़ भी दिया। उन्होंने इस प्रतिष्ठान का भरपूर लाभ उठाया। वे कहानी, कविता, एकांकी, हास्य और व्यंग्य, लेख, रिपोर्ताज़, संस्मरण यानी विभिन्न विधाओं में लिखने और छपने लगे।

'उग्र' की प्रतिभा से प्रभावित होकर पराड़कर जी ने 'आज' के बृहत्तर मंच पर उस युवा रचनाकार को इस प्रकार खड़ा किया कि वह तमाम पुराने रचनाकारों के लिए चुनौती बन गया। वे 'आज' में ही एक व्यंग्य-स्तम्भ के लेखक बने। अपना छद्म नाम रखा 'अष्टावक्र' यानी आठ जगहों से टेढ़ा और छद्म नाम के वज़न पर ही स्तम्भ का शीर्षक लगाया 'ऊटपटाँग'। द्विवेदी-युग में व्यंग्य-लेखन की धारा काफ़ी कुण्ठित हो गयी थी। ईश्वरी प्रसाद शर्मा और हरिशंकर शर्मा के व्यंग्यों की धार बालमुकुन्द गुप्त की तरह न तो पैनी थी और न ही उनमें राष्ट्रीय और सामाजिक चिन्तन की नवधारा प्रवाहित करने की शक्ति थी। 'उग्र' ने 'ऊटपटाँग' के व्यंग्यों द्वारा बिलकुल नये रास्तों की तलाश की।

'आज' के प्रारम्भिक दिनों में प्रकाशन को लेकर 'उग्र' को एक हल्का-सा धक्का भी लगा था। 'शहीद मैक्स्विनी' के प्रकाशन से उत्साहित होकर उन्होंने 'गाँधी आश्रम' शीर्षक से एक कहानी लिखी। कहानी श्री प्रकाश जी के विचारार्थ प्रस्तुत की गयी, परन्तु उन्होंने बिना पढ़े ही उसे अस्वीकृत कर दिया। वे 'आज' में किसी लड़के की कहानी नहीं छाप सकते थे, ख़ास तौर से तब जब उसी बनारस में पचपन वर्षीय किशोरीलाल गोस्वामी, चालीस वर्षीय प्रेमचन्द, छत्तीस वर्षीया 'बंग महिला' और तीस वर्षीय जयशंकर प्रसाद कहानियाँ लिख रहे थे। दैनिक होकर भी 'आज' उस समय के किसी भी लेखक के लिए त्याज्य नहीं था।

हालाँकि पराड़कर जी द्वारा आवश्यक संशोधन करने के बाद वह कहानी 'आज' में ही प्रकाशित हुई, परन्तु लेखक का नाम पाण्डेय बेचन शर्मा के स्थान पर शशिमोहन शर्मा दे दिया गया। 'उग्र' ने लिखा था, "मेरा दिल टूटे नहीं', इसके लिए मुंशी हरिहर नाथ जी ने यह उपाय किया था।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 108)। सच में

बेचन पाण्डेय का दिल नहीं टूटा था, क्योंकि नियति ने उनकी काया में टूटनेवाला दिल रखा ही नहीं था। इस प्रकार दो-ढाई वर्षों के भीतर 'आज' ने 'उग्र' की लगभग सात-आठ दर्ज़न रचनाएँ प्रकाशित कीं। वह उनके लेखकीय व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गया। 'उग्र' के लेखकीय प्रस्थान, अभियान और गति को जानने के लिए वह दस्तावेज़ अब भी महत्त्वपूर्ण है।

'स्वदेश' 'उग्र' के रचनात्मक जीवन का प्रथम चरण था। इसमें 'उग्र' की पहली रचना तब प्रकाशित हुई थी, जब 'आज' का जन्म ही नहीं हुआ था। 'स्वदेश' के सम्पादक दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने साम्राज्यवादी सरकार के विरुद्ध लड़ते हुए इसे एक हथियार के रूप में प्रकाशित किया।

'स्वदेश' के प्रवेशांक (माघ शुक्ल 5 सम्वत् 1975) में ही 'स्वदेश' का सन्देश घोषित किया गया, "हिन्दोस्तान के उद्धार हेतु बीड़ा" और मोटो वाक्य (कविता) दिया गया—"जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं, वह हृदय नहीं है, पत्थर है जिसमें 'स्वदेश' का प्यार नहीं।" यह युवा 'उग्र' के राष्ट्रीय भावों को झकझोर कर रख देनेवाला था। इसकी कविताओं के रचनाकार थे 'कंटक', 'शक्ति', 'त्रिशूल', 'कालकराल', 'राष्ट्रीय पथिक' और 'राष्ट्रीय सेवक'। इसमें एक 'ग़ज़ल' छपी थी, जिसका एक शेर था—'बाग़े वतन को इस क़दर अपने लहू से सींच, तालिब न हो किसी की मदद का कभी भी तू'। श्री कृष्णदत्त पालीवाल का 'स्वदेश के सपूत फिर भी अछूत' और लाला लाजपत राय का 'भारतीय किसान' शीर्षक लेख छपे। प्रेमचन्द की कहानी प्रकाशित हुई, 'सेवामार्ग'। मानों...'स्वदेश' के प्रथम अंक की सारी रचनाएँ बेचन का आह्वान कर रही थीं।

'स्वदेश' के पहले ही अंक में दिए गये कवियों के छद्म नाम बेचन के लिए प्रेरणा के स्रोत बने। उन्होंने भी अपने छद्म नाम की तलाश शुरू की। इसी तलाश में बेचन पाण्डे 'उग्र' बने। 'आह्वान' शीर्षक से अपनी एक कविता 'स्वदेश' के लिए भेज दी, जो 11 अगस्त, 1919 में पृष्ठ 7 पर सबसे ऊपर क्रॉस-हेडिंग में छपी। अत्यन्त सम्मान के साथ नीचे बड़े कोष्ठक में रचनाकार का नाम दिया गया—'श्रीयुत् पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र''। 'उग्र' के नीचे छपे 'कुसुम' और इनके नीचे 'कंटक', परन्तु इन दोनों के लिए 'श्रीयुत्' का प्रयोग नहीं किया गया। हालाँकि 'उग्र' के जीवन का प्रथम प्रकाशन था 'आह्वान', परन्तु सम्मान उन्हें पहले से प्रकाशित होनेवालों से ज़्यादा मिला।

'स्वदेश' (11 अगस्त, 1919) में आह्वान के कवि श्रीयुत् पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को देखकर उनका यह कथन, "मैंने पहली कहानी लिखी—'गाँधी आश्रम'। वह कहानी पाण्डे बेचन शर्मा 'उग्र' के नाम से नहीं, मेरे एक अन्य नाम शशिमोहन शर्मा—नाम से छपी थी। तब तक मैंने 'उग्र' उपनाम नहीं रखा था (*अपनी ख़बर*, पृ. 107 और 108), सन्देहास्पद हो जाता है। यह कविता 'आज' (दैनिक) के प्रथम

प्रकाशन से 373 दिन पहले प्रकाशित हुई थी और उसी समय बेचन पाण्डे ने अपना उपनाम 'उग्र' रख लिया था। बेचन पाण्डे का उपनाम—'उग्र'—'आज' के खाते में नहीं 'स्वदेश' के खाते में दर्ज़ हुआ था।

'स्वदेश' में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कविताएँ 11 अगस्त सन् 1919 से लेकर 24 अगस्त सन् 1924 तक प्रकाशित होती रही थीं। वे सन् 1920 के आख़िरी दिनों से 'आज' में भी छपने लगे। लेखन-जगत में ख्याति का सिक्का जम गया था। इसी बीच 'स्वदेश' में एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ,

> "आगामी दशहरा के शुभ अवसर पर ता. 5 अक्टूबर को 'स्वदेश' का एक सुन्दर 'विजयांक' प्रकाशित होगा। 48 पृष्ठों की सामग्री होगी। इस अंक का सम्पादन श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' करेंगे।"—निवेदक, मैनेजर स्वदेश, गोरखपुर।

'स्वदेश' (21 सितम्बर 1924) का यह विज्ञापन 'उग्र' के लेखन और उनके क्रान्तिकारी विचार दोनों की अग्नि-परीक्षा साबित हुआ। 'स्वदेश' के विजया-अंक का सम्पादन 'उग्र' ने अकेले किया। 'विजयांक' के 1, 5, 44 और 45 पृष्ठों पर प्रकाशित लेख और कविताओं पर ताजीराते हिन्द दफ़ा 124 (अ)—राजद्रोह के तहत दशरथ प्रसाद द्विवेदी 5 सितम्बर, 1924 की शाम गिरफ़्तार कर लिए गये। (स्वदेश : 7 दिसम्बर, 1924, मुखपृष्ठ)। 'उग्र' फ़रार हो गये। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा था,

> "स्वदेश के दशहरा अंक का सम्पादन भी मैंने ही किया था, परम भयानक। सारा अंक विस्फोटक आग्नेय मन्त्रों से भरा था। गोरी गवर्नमेण्ट में तहलका मचा, गवर्नर-इन-कौंसिल ने केस चलाने का निश्चय किया। लेकिन बन्देख़ाँ तब तक 'मतवाला-मण्डल' में कलकत्ता थे।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 132)।

गोरखपुर का वारंट जब कलकत्ता पहुँचा, 'उग्र' बम्बई (मुम्बई) भाग गये। एक फ़िल्म कम्पनी में काम करने लगे। वारंट इनके पीछे लगा रहा और वे पाँचवें महीने सी.आई.डी. पुलिस द्वारा मालाबार हिल पर गिरफ़्तार कर लिए गये। 'उग्र' ने अपनी गिरफ़्तारी का बड़ा रोचक वर्णन किया है,

> "पाँव में बेड़ी, हाथ में हथकड़ी, भुजा पर सूती रस्सा बँधवाए तीन-तीन सशस्त्र पुलिस वालों के साथ मैं बम्बई से गोरखपुर वापस भेजा गया। तीन महीने तक केस चलने के बाद मुझे नौ महीने की सख़्त सज़ा मिली। 'स्वदेश' संचालक को उसी केस में 27 महीने की सख़्त सज़ा मिली थी। सारी ग़लती मेरी थी, पर चूँकि मैं नाटा था—नन्हा-सा, दाढ़ी-न-मूँछ और दशरथ प्रसाद द्विवेदी उम्र-रसीदा दाढ़ी वाले सज्जन थे, अतः लोअर कोर्ट से हाईकोर्ट तक ने असल अपराधी बेचारे दशरथ प्रसाद द्विवेदी को माना। तब अदालत ने मेरे बारे में घोषित किया था, कि यह तो इक्कीस साल का लल्ला है, (He

is a lad of twenty one years)। जेलों में होने पर भी प्राण मेरे अप्रसन्न नहीं थे।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 133)।

'स्वदेश' और 'उग्र' को समझने के बाद यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि 'उग्र' के कवि-रूप, सम्पादक-रूप और देश भक्त को गढ़ने, सँवारने और उनमें प्राणों का स्पन्दन करने में 'स्वदेश' ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी। हालाँकि 'स्वदेश' सन् 1929-30 तक प्रकाशित होता रहा, परन्तु पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' उसमें वापस नहीं गये।

'उग्र' और 'स्वदेश' का विजयांक

'उग्र' द्वारा सम्पादित 'स्वदेश' का विजयांक (5 अक्टू. 1924) 'परम भयानक' था। तद्‌युगीन हिन्दी-साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में इसका और इसके सम्पादक 'उग्र' का भारी स्वागत हुआ। 'स्वदेश' से भागकर 'उग्र' जी जिस 'मतवाला' में गये थे, उसने भी 'उग्र' के सम्पादन की भारी प्रशंसा की थी। 'मतवाला' ने लिखा था, " 'स्वदेश' का विजयांक सम्पादक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'। गोरखपुर के सहयोगी स्वदेश का विजयांक सुन्दर निकला है। लेखों और कविताओं का चुनाव सर्वांग सुन्दर हुआ है, यह हम नहीं कहते, किन्तु इतना अवश्य कहेंगे, कि अधिकांश लेखों और कविताओं में अध्ययन और मनन की काफ़ी सामग्री है। 'उग्र' का लिखा हुआ 'लाल क्रान्ति के पंजे में' शीर्षक एकांकी नाटक अच्छा है। अनूप शर्मा की 'भावी क्रान्ति' शीर्षक कविता भी अच्छी है। अन्य लेखों के विषय में इतना कहना ही यथेष्ठ होगा, कि अधिकांश लेख हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ और विद्वान लेखकों जैसे बा. सम्पूर्णानन्द जी-बी.एस-सी., श्री प्रेमचन्द जी और पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी.ए.एल.एल.बी. आदि के लिखे हुए हैं। कविताएँ भी प्रसिद्ध कवियों की हैं। मतलब यह कि विजयांक के संग्रह-योग्य होने में कोई सन्देह नहीं है। (1 नव., 1924 पृ. 10)

आज 'स्वदेश' का विजयांक प्रायः अनुपलब्ध है। इसलिए 'उग्र' का एकांकी 'लाल क्रान्ति के पंजे में' अब तक असंकलित पड़ा है। 'विजयांक' में 1, 5, 44 और 45 पर छपी सामग्रियों को गोरी सरकार द्वारा राजद्रोहपूर्ण घोषित किया गया। पृ. 44 और 45 पर 'उग्र' का एकांकी छपा था। अनूप शर्मा के घनाक्षरी छन्द भी विस्फोटक थे। स्वाभाविक था कि 'स्वदेश' पर नौकरशाही का आक्रमण होता। 4 दिसम्बर 1924 तक इस बात की कोई ख़बर नहीं लग सकी कि विजयांक और उसके सम्पादकों पर साम्राज्यवादी सरकार की गाज़ पड़ने जा रही थी। एकाएक जब 5 दिसम्बर की शाम दशरथ प्रसाद द्विवेदी गिरफ़्तार कर लिए गये, तब 'उग्र' वहाँ से भाग निकले। 'स्वदेश' पर सरकारी जुल्म-व-सितम का ज़िक्र करते हुए 'उग्र' ने लिखा था,

" 'स्वदेश' के उस अंक को लेकर—प्रेमचन्द के भाई महताब राय पकड़े गये, सरस्वती प्रेस के प्रिण्टर। दशरथ प्रसाद द्विवेदी गिरफ़्तार हुए स्वदेश के संचालक, स्वदेश प्रेस रौंद डाला गया। लेकिन बन्दे ख़ाँ तब तक 'मतवाला-मण्डल' में कलकत्ता थे।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 132)

लगता है कि 'स्वदेश' प्रेस रौंद डालने की बात 'उग्र' की अतिशयोक्ति थी, क्योंकि विजयांक के बाद उसके कुछ अंक आगे भी निकलते रहे। सम्पादक का दायित्व रामनाथ लाल 'सुमन' ने सँभाल लिया था। 'उग्र' ने 'मतवाला' में जाने को लेकर भी अन्तर्विरोधी बातें कहीं हैं। मसलन जब स्वदेश के संचालक दशरथ प्रसाद द्विवेदी बन्दी बनाए गये तब वे भागकर 'मतवाला-मण्डल' में चले गये थे। परन्तु इसके विपरीत उन्होंने यह भी लिखा था, "कि सन् 1924 में काकीनाडा कांग्रेस में सम्मिलित हुआ था। वहाँ से कलकत्ता लौटने पर एक मित्र के साथ 'मतवाला-मण्डल' देखने गया।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 131)। परन्तु यह सभी जानते हैं कि काकीनाडा काँग्रेस दिसम्बर, 1923 के आख़िरी दिनों में हुआ था। तब तक स्वदेश के विजयांक का प्रकाशन ही नहीं हुआ था।

इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने विस्मरण के कारण ही काकीनाडा काँग्रेस (1923) में शामिल होने के बाद 'मतवाला' कार्यालय पहुँचने की बात लिख दी थी। सन् 1924 की दिसम्बर में काँग्रेस का अधिवेशन बेलगाँव (महाराष्ट्र) में हुआ था। निश्चित रूप से वे बेलगाँव काँग्रेस की समाप्ति पर मतवाला-कार्यालय पहुँचे होंगे। समय था जनवरी (1925) का प्रथम सप्ताह। उन्होंने यह सही लिखा था कि 'मतवाला' में मेरी भी कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 131)

'मतवाला-कार्यालय' में प्रथम बार जाने के पहले 'उग्र' की कुल नौ रचनाएँ उसमें (मतवाला) प्रकाशित हो चुकी थीं। विवरण इस प्रकार है—

क्रम सं.	शीर्षक	विधा	अंक की तिथियाँ
1.	माँ	उद्‌गार	25 मार्च, 1924 पृ. 6
2.	दो आँखें	कहानी	3 मई, 1924 पृ. 7
3.	वैषम्य	कविता	10 मई, 1924 पृ. 9
4.	चॉकलेट	कहानी	31 मई, 1924 पृ. 8
5.	पालट	कहानी	19 जुलाई, 1924 पृ. 8
6.	वीरकन्या	कहानी	2 अगस्त, 1924 पृ. 8
7.	हम फ़िदाए लखनऊ	कहानी	6 सितम्बर, 1924 पृ. 5
8.	विप्लव गान	गद्य-काव्य	13 सितम्बर, 1924 पृ. 11
9.	प्यारे	कहानी	4 अक्टूबर, 1924 पृ. 6

'उग्र' की ये सभी रचनाएँ 'आज' से 'स्वदेश' तक की यात्रा के दरम्यान ही

'मतवाला' में प्रकाशित होती रहीं थीं। इन रचनाओं के अतिरिक्त उनकी कुछ रचनाएँ छद्म नामों से भी प्रकाशित हुई थीं। ऐसे अनेक तर्क और प्रमाण उपलब्ध हैं, जो साबित करते हैं कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के निखट्टू, पतित, ग्रामीण आदि कई छद्म नाम थे।

'मतवाला' में 'उग्र' पहली बार

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' 'मतवाला' में पहली बार जनवरी, 1925 में आये थे। उन्होंने लिखा था कि तब तक वे हिन्दी में काफ़ी चमकीले लेखक बन चुके थे। (*अपनी ख़बर*, पृ. 131) उनके लेखकीय चमत्कार का विस्तार 'आज' (दैनिक) से शुरू होकर 'स्वदेश', 'अग्रसर' और 'मतवाला' में क्रमशः होता रहा था। 'मतवाला' में तो उनका चमकीलापन परवान चढ़ गया था। यहीं वे नेकनाम भी हुए और बदनाम भी। उनके लेखक के 'नेकनाम' ने उन्हें सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर क्रान्तिकारी लेखक की मान्यता दिलाई तो उनके 'बदनाम' ने उन्हें हिन्दी समाज का बहिष्कृत लेखक घोषित किया। तद्‌युगीन आलोचकों और सम्पादकों द्वारा उनके लेखन को घासलेटी साहित्य कहा गया। 'विशाल भारत' के माध्यम से बनारसीदास चतुर्वेदी ने घासलेटी साहित्य का जो अभियान छेड़ा था, वह विश्वविद्यालयों की हिन्दी कक्षाओं में भी कथा-समीक्षा का एक मूल मुद्दा बन गया था। साहित्य में वर्जित विषय को केन्द्र में रखकर कहानियाँ—चॉकलेट, पालट और हम फ़िदाए लखनऊ—लिखने के कारण वे मतवाला आगमन के पूर्व ही बदनाम लेखक बन चुके थे। 'अग्रसर' में पहली बार जब उनकी कहानी 'दिल्ली की बात' प्रकाशित हुई, तब भी वे बदनाम हुए थे। परन्तु जब नेकनाम-बदनाम लेखक पहली बार (जनवरी 1925) 'मतवाला-मण्डल' में आया, तब उसका काफ़ी स्वागत हुआ था। स्वयं उन्होंने ही लिखा था, " 'मतवाला-मण्डल' में ही पहले-पहले (आचार्य) शिव पूजन सहाय और 'निराला' जी से मेरा आकर्षक परिचय हुआ था।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 132)

'मतवाला-मण्डल' में प्रथम बार आकर 'उग्र' ज़्यादा दिनों तक वहाँ नहीं रह सके थे। कारण था अंग्रेज़ी सरकार द्वारा ज़ारी उनकी गिरफ़्तारी का वारण्ट। 'स्वदेश-विजयांक' के विस्फोटक प्रकाशन के कारण दिसम्बर, 1924 में ही वारण्ट जारी कर दिया गया था। 'उग्र' को तलाश करता हुआ वारण्ट फ़रवरी, 1925 के शुरुआती दिनों में कलकत्ता पहुँचा था। फलतः वे मुम्बई भाग गये।

'स्वदेश' (गोरखपुर) छोड़ने ओर 'मतवाला' (कलकत्ता) में आने के बीच 'उग्र' की तीन रचनाएँ और 'मतवाला' में प्रकाशित हुई थी। ये तीनों कहानियाँ थीं—'देशभक्त' (15 नव., 1924, पृ0 5), 'कमरिया नागन-सी बलखाय' (6 सि.,

1924, पृ. 4) और 'चॉकलेट चर्चा' (13 सि., 1924, पृ. 6), 'मतवाला' में आने और वारण्ट से डरकर मुम्बई भागने के बीच उनकी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं हो सकी थी। 'उग्र' के जीवन में 'मतवाला-मण्डल' का प्रथम इतिहास अत्यन्त छोटा था। लेकिन जब वे 'मतवाला-मण्डल' में दूसरी बार आये, तब उनके लेखकीय व्यक्तित्व को बहुत बड़ा आकार मिल गया।

मतवाला-मण्डल में दूसरी बार

लगभग दस महीने के अन्तराल के बाद 'उग्र' 'मतवाला-मण्डल' में दूसरी बार सम्मिलित हुए। 'मतवाला' से यह विलगाव उनकी लाचारी थी। उन्होंने इस सन्दर्भ में स्वयं ही लिखा था कि वे गोरखपुर में वारण्ट के भय से 'मतवाला' से भागकर मुम्बई पहुँचे थे और एक संगी के संग साइलेण्ट फ़िल्म कम्पनी में काम करने लगे थे (*अपनी ख़बर*, पृ. 133)। मुश्किल से एक या डेढ़ महीने कम्पनी में काम करते बीते थे कि वे मालाबार हिल पर गिरफ़्तार हुए और वापस गोरखपुर लाए गये। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध राजद्रोह करने का केस लगभग तीन महीने चला। इसके बाद हवालात अवधि को जोड़कर नौ महीने की सज़ा दी गयी।

'उग्र' नौ महीने तक कारागार का नरक भोगकर 8 फरवरी, 1926 को जेल से मुक्त हुए थे। इनकी मुक्ति का समाचार पाकर 'मतवाला' ने अपने आवरण-पृष्ठ पर इनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व का स्वागत किया। स्वागत के लिए शीर्षक लगाया गया, "कारी दरबारे यही 'उग्र' महाराज हैं।" स्वागत-गान के नीचे विवरण दिया गया, "मतवाला के पाठकों के परिचित, हिन्दी के होनहार नवयुवक लेखक और कवि, स्वदेश-प्रेम-मदमस्त श्रीयुत् पण्डित बेचन शर्मा 'उग्र' पूरे नौ मास के बाद मानों नौकरशाही का कारा-भ्रूण विदीर्ण कर परसों सोमवार ता. 8 फ़रवरी को बाहर निकल पड़ेंगे। मतवाला-मण्डल आपका हृदय से स्वागत करते हुए भगवान् भोलानाथ से प्रार्थी हैं कि आप सदा नौकरशाही की आँखों की किरकिरी बने रहें।" (मतवाला, 6 फ़रवरी, 1926 मुख पृ.)।

'मतवाला' ने 'उग्र' के स्वागत के लिए असाधारण उत्साह दिखाया। उन्हीं के सन्दर्भ में 'अग्रलेख' (सम्पादकीय) तक लिखा, 'एक तरफ़ा डिगरी'। जो मुखपृष्ठ निराला की कविताओं के लिए सुरक्षित रखा जाता था, उसी को 'उग्र' के स्वागत के लिए प्रयुक्त किया गया। मतवाला-मण्डल में 'उग्र' का दूसरा आगमन उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण के लिए कुशल प्रजापति सिद्ध हुआ।

'उग्र' 'मतवाला' में दूसरी बार 13 फ़रवरी, 1926 को आए और 28 सितम्बर, 1929 तक रहे यानी लगभग तीन वर्ष साढ़े सात महीने। इस अवधि में अगर 'मतवाला' को रचनात्मक विविधता मिली, तो 'उग्र' को भी अपने साहित्यिक

अभ्युदय के लिए विस्तृत भूमिका मिली। इसके पहले उन्होंने कोई उपन्यास नहीं लिखा था। लम्बी कहानियाँ भी नहीं लिखी थीं। इसी लम्बी अवधि में उन्हें विविध विधात्मक लेखन करने के सुयोग प्राप्त हुए। इस तरह संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों स्तरों पर उन्होंने अपने सृजन-कौशल का परिचय दिया।

'मतवाला' में दूसरी बार आकर 'उग्र' ने *चन्द हसीनों के ख़तूत* (15 जनवरी 1927), *दिल्ली का दलाल* (28 फ़रवरी, 1927), *बुधुआ की बेटी,* (13 फ़रवरी, 1927), *परदे में पापा* (12 मई, 1928), और *शराबी* (20 अप्रैल 1929) जैसे उपन्यास लिखे, जो धारावाहिक रूप से 'मतवाला' में प्रकाशित होते रहे थे। लगभग एक दर्जन कहानियाँ लिखीं, मसलन 'मोटी चुटकी' (17 मार्च, 1928), 'बाप की बेटी' (2 फ़रवरी, 1929), 'कसाई कहाँ है?' (16 मार्च, 1929), 'कवि' (23 फ़रवरी, 1929), 'पण्डुवा' (9 मार्च, 1929), 'उल्लू' (16 मार्च, 1929), 'माँ को चुनरी की साध' (20 अगस्त, 1927), 'मुक्त' (24 अगस्त, 1927) 'वीभत्स' (7 सितम्बर, 1929), 'मेरी माँ' (19 अप्रैल, 1930) आदि।

'मतवाला' में दूसरी बार आने के बाद 'मतवाला' और 'उग्र' एक दूसरे के विकल्प बन गए। 'उग्र' मतवाला को 'मतवाला' बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे थे और 'मतवाला' उनकी सृजन-प्रतिभा को हिन्दी जगत में विख्यात करने में लगा रहा। 'उग्र' ने 'मतवाला' को 'निराला' अथवा शिवपूजन सहाय की कमी नहीं खटकने दी। वे सभी स्तम्भ उनके द्वारा भरे जाने लगे, जिन्हें छोड़कर निराला जी अथवा सहाय चले गए थे। इन्हीं सन्दर्भों में 'उग्र' को लगभग आधा दर्जन छद्म नाम चुनने पड़े। 'अष्टावक्र' वे 'आज' (दैनिक) में ही बन चुके थे। 'मतवाला' में आकर इसे पुनर्जीवित किया। 'आज' में 'ऊटपटाँग' लिखते थे, 'मतवाला' में 'आँय बाँय साँय' लिखने लगे। अपने समय की विसंगतियों को 'व्यंग्य-लेखन' बनाने की प्रवृत्ति उनमें प्रारम्भ से ही थी। 'मतवाला' में आकर उसे पूरी तरह निखारने का मौक़ा मिला। 'मतवाला' के स्तम्भों पर रगड़-रगड़कर अपने व्यंग्यों को पैना बनाया और इनमें उनके समय का समूचा अवतरण हुआ।

'मतवाला' ने 20 अक्टूबर, 1928 से 'उग्र' की रचनाओं का आकर्षक विज्ञापन प्रकाशित करना शुरू किया। काव्यात्मक भाषा में पूरे पृष्ठ के विज्ञापन लगातार छपने लगे। *चन्द हसीनों के ख़तूत, चाकलेट, चिनगारियाँ, दिल्ली का दलाल, दोज़ख़ की आग, बलात्कार, बुधुआ की बेटी* और *इन्द्रधनुष* शीर्षक किताबों के कई-कई संस्करण छपे। इन सभी का प्रकाशन 'मतवाला' के संस्थापक तथा प्रकाशक महादेव प्रसाद सेठ ने ही किया था। इनकी प्रकाशन-संस्था का नाम था—बीसवीं सदी पुस्तकालय, गऊघाट, मिरज़ापुर सिटी (यू. पी.)। यही स्थान सेठ जी का पैतृक आवास भी था।

'मतवाला' के प्रयास से 'उग्र' की पुस्तकों का बाज़ार-भाव काफ़ी ऊँचा हो गया था। डेढ़ महीने में 'दिल्ली का दलाल' की 1100 प्रतियाँ बिक गईं। *चन्द हसीनों के ख़तूत* और *चाकलेट* के भी कई-कई संस्करण निकले। डॉ. रामविलास शर्मा के कथन—"महादेव प्रसाद सेठ के घरवालों को मालूम हो गया कि किताबों का धन्धा पत्थरों के रोज़गार से बुरा नहीं है" (*निराला की साहित्य साधना*—3, पृ. 108)—द्वारा 'उग्र' की पुस्तकों के बाज़ार का अनुमान भलीभाँति लगाया जा सकता है।'

'मतवाला' में 'उग्र' का दूसरी बार आना उनके रचनात्मक जीवन का उत्कर्ष-काल साबित हुआ। इस सन्दर्भ में 'उग्र' ने स्वयं लिखा था, "1927, 1928 और 1929 मेरे लेखन-जीवन में ज़बरदस्त कोलाहलकारी रहे। विख्यात 'मतवाला-मण्डल' से मेरा सम्बन्ध फिर से जुड़ा, गठा और परम दृढ़ हुआ था।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 134)।

'मतवाला' के आर्थिक संकटों में फँसने के कारण 'उग्र' को एक बार फिर उससे विलग होना पड़ा। 10 अगस्त, 1929 के मुखपृष्ठ पर 'मतवाला' के मिर्ज़ापुर जाने की सूचना छपी और 28 सितम्बर, 1929 से वह मिर्ज़ापुर सिटी में प्रकाशित होने लगा। यह 'उग्र' की इच्छा के अनुकूल नहीं था। कलकत्ता का जीवन उनके लिए एक सपना था। इस स्थिति का उल्लेख करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है—"'उग्र' निराला के सामने डींग हाँकते—मैं मिडिलफ़ेल बाज़ार-सम्राट हूँ, हिन्दी-लेखकों में अकेला रेस खेलता हूँ, स्टेट्समैन पढ़ता हूँ, बिलायती शराब पीता हूँ।" (*निराला की साहित्य साधना*-3 पृ. 109)। 'उग्र' के लिए मिर्ज़ापुर सिटी में इन सुख-सुविधाओं की कोई सम्भावना नहीं थी, इसलिए सन् 1929 बीतते-बीतते वे 'मतवाला' छोड़कर एक बार फिर मुम्बई भागे और फ़िल्म-कम्पनियों से जुड़ गए।

'मतवाला' में तीसरी बार

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' मतवाला में तीसरी बार अक्टूबर, 1948 में आए। 'मतवाला' 17 वर्षों से बन्द पड़ा था। इसके सम्पादक और प्रकाशक महादेव प्रसाद सेठ की मृत्यु हो चुकी थी। जब 'उग्र' सन् 1930 में 'मतवाला' छोड़कर मुम्बई चले गए थे, तब उन्हें लगा था कि फ़िल्म कम्पनियों का जीवन ऐश-व-इशरत के साथ ही धनार्जन के लिए भी महत्त्वपूर्ण था। परन्तु उनका सपना सच नहीं साबित हुआ। सन् 1938 में वे फिर पत्रकारिता की ओर मुड़े। बनारस जाकर 'उग्र' (साप्ताहिक) सम्पादित-प्रकाशित किया, जो मुश्किल से पाँच सप्ताह चल सका। 'वीणा' और 'विक्रम' से थोड़े-थोड़े दिनों तक जुड़ते-टूटते सन् 1945 में इन्दौर चले गए। वहाँ से 'संग्राम' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया, परन्तु इसमें भी सफलता नहीं मिली।

हालाँकि 'उग्र' में प्रभूत प्रतिभा थी, सम्पादन का व्यावहारिक अनुभव था।

मुम्बई का हलचलों भरा माहौल था और उन्हें मित्र-रचनाकारों का सहयोग भी कम नहीं था, परन्तु पत्र-प्रकाशन के लिए अनिवार्य साधन पैसा नहीं था। स्वभाव से अक्खड़ होने के कारण न वे विज्ञापन पा सकते थे और न ही आवश्यक सीमा तक ग्राहकों की संख्या बढ़ा सकते थे। मुम्बई की महानगरी में वे बहुत गरजे-बरसे, परन्तु सब व्यर्थ गया। सन् 1930 से लेकर 1947 तक उन्हें कोई महादेव प्रसाद सेठ नहीं मिला। सेठ जी और 'उग्र' के प्रकाशक और सम्पादक-सम्बन्धों की दास्तान निराली थी। महादेव प्रसाद सेठ पर 'उग्र' का प्रभाव बढ़ता गया। सुन्दर भोजन, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर इत्र-फुलेल, सुन्दर नाज़-नखरे—महादेव प्रसाद सबका भार वहन करते; 'उग्र' की गालियाँ सुनते और उनकी खुशामद करते। (*निराला की साहित्य साधना*-3, पृ. 108)। जब सेठ जी के पुत्र हरगोविन्द सेठ 'उग्र' को मतवाला से निकाल बाहर करने की ज़िद करते तो महादेव बाबू का एक ही उत्तर होता, "बेटा, दुधारू गाय के चार लात भी भले होते हैं।"

मुम्बई या उज्जैन प्रवास के दौरान भी मतवाला की स्मृतियाँ 'उग्र' की ज़ेहन में कौंधती रहतीं। इसलिए 'स्वराज' मिलते ही वे उ. प्र. लौटे और 'मतवाला' का सम्पादन करने लगे। (*अपनी ख़बर*, पृ. 135)

मिर्ज़ापुर आकर 'उग्र' 'मतवाला' प्रेस, गऊघाट गए। महादेव प्रसाद सेठ के पुत्र हरगोविन्द सेठ से मिलकर 'मतवाला' के पुनः प्रकाशन की योजना बनाई। स्वयं प्रधान सम्पादक बने। हरगोविन्द सेठ प्रकाशक और सहायक सम्पादक बने और 31 मार्च, 1948 से 'मतवाला' का पुनः प्रकाशन शुरू किया। इस बार आठ पेज को अकेले 'उग्र' को भरना पड़ता। 'मतवाला' के पुराने स्तम्भों में केवल 'बहक' और 'चक्की' रह गए। ये दोनों व्यंग्य-स्तम्भ थे और 'उग्र' की प्रकृति के अनुरूप थे। 'अग्रलेख' भी पहले की तरह उत्तेजक होते, परन्तु उनके भाषा-विन्यास में भारी परिवर्तन हो गया। कहना तो यह सच होगा कि आठ पृष्ठों का 'मतवाला' पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रकृति का प्रतीक बन गया। यहाँ एक-दो उदाहरण अप्रासंगिक न होंगे—

अग्रलेख—'बाजे डमरू! नाचे महाकाल जगद्गुरु!!'

'यह कल की ही तो बात है, वीरभद्र 'मतवाला' की भेंट हुई थी देवाधिदेव महाकाल महादेव से। आप कहेंगे कि महाकाल से मिलना खिलवाड़ नहीं। आप कहेंगे कौन ला सकता है ताबे जल्वए दीदार दोस्त? हमारा उत्तर है कि—महाकाल से वह मिला था—बाई एप्वाइण्टमेण्ट।" (मतवाला, वर्ष 25 सं. 44, 26 फ़रवरी, 1949 पृ. 3)

मतवाले की बहक—"कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ हमारी सरकार लाल रंग से भड़कती है, लाल शब्द से। अतएव अब भारतीय माताएँ अपने दुलारों को 'लाल' न पुकारेंगी, भले बाल, काल, जाल, टाल सम्बोधित कर लें।" (वही, पृ. 5)

चलती चक्की—"मद्रास के मिनिस्टर बने काँग्रेसियों ने प्रान्त के सारे-के-सारे काँग्रेसियों को पोस्टमैनों के पद पर नियुक्त करने का प्रबल प्रलोभन दिया है। पद-प्रेमियों के लिए दुर्लभ सुअवसर।" (वही, पृ. 8)

'मतवाला' में तीसरी बार आने के बाद 'उग्र' प्रत्येक अंक में राजनीतिक लेख देने लगे, 'उग्र' के नाम से। कभी एक, कभी दो और कभी दो से ज़्यादे। इन लेखों में उनके व्यंग्य ज्यों के त्यों पैने बने रहे। ये लेख शोषकों के विरुद्ध आम जनता के लिए व्यंग्यात्मक लड़ाई के मोर्चे थे। 'मतवाला' के कभी आठ, कभी दस और कभी बारह पृष्ठों पर 'उग्र' को सामाजिक और राजनीतिक चेतना जगाने के लिए सामुदायिक प्रशिक्षक का काम करना पड़ता। अकेले होकर भी वे थकते नहीं थे। आठ पृष्ठ भरने के लिए सोलह घण्टे जूझते थे।

इस तीसरी बार 'मतवाला' में वे पूरी तरह अवैतनिक प्रधान सम्पादक थे। प्रकाशक हरगोविन्द सेठ ने अपने घर पर ही इनके रहने-खाने की व्यवस्था तो कर ही दी थी, साथ ही भंग छानने और पूरक रूप में मलाई खाने तक की व्यवस्था कर दी थी। 'मतवाला' के पास प्रेस (प्रिण्टिंग) अपना था, काग़ज़ का प्रबन्ध सेठ जी को करना पड़ता। हस्तक्षेप कहीं कुछ भी नहीं था। परन्तु फिर भी चौदह महीने से आगे 'मतवाला' नहीं चल सका। कारण था कि इक्यावन वर्षीय 'उग्र' का मौज-ए-ख़याल अभी कुन्द नहीं पड़ा था। कलकत्ता याद आते ही उन्होंने 'मतवाला' को आख़िरी नमस्कार बोल दिया।

'मतवाला' में 'उग्र' का तीसरा आगमन भी रचनात्मक दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहा। इसके 55-56 अंकों में उनके दर्ज़नों लेख और सैकड़ों व्यंग्य प्रकाशित हुए। पचपन-छप्पन अग्रलेख भी छपे। सामयिक समस्याओं के विश्लेषण भी निकले। इनमें से ज़्यादातर रचनाएँ राजनीति और साहित्य को केन्द्र में रखकर निर्मित हुई थीं। 'उग्र' का यह सम्पूर्ण लेखन आज तक असंकलित पड़ा हुआ है।

मिर्ज़ापुर के इस एक वर्षीय प्रवास-काल में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने एक राजनीतिक उपन्यास और एक राजनीतिक नाटक भी लिखे। सन् 1948-49 के 'मतवाला' में इन दोनों कृतियों का विज्ञापन किया गया। 'उग्र' लिखित नई पुस्तकों के शीर्षक में विज्ञापित किया गया—

1. *गंगाजल* (राजनीतिक उपन्यास) मूल्य 5/ (पाँच रुपये)
2. *नई पीढ़ी* (राजनीतिक नाटक) मूल्य 2/ (दो रुपये)

प्रेस में चली गईं, प्रतियाँ कम छपेंगी, एडवांस और आर्डर भेजिए—'बीसवीं सदी पुस्तकालय, गऊघाट, मिर्ज़ापुर सिटी।'

'उग्र' की उपर्युक्त दोनों पुस्तकें अभी तक अप्राप्त पड़ी हैं। हालाँकि हरगोविन्द सेठ का कहना है कि पुस्तकें प्रकाशित हुईं, परन्तु प्रामाणिक साक्ष्य के अभाव में निश्चय-पूर्वक कुछ कहना सम्भव नहीं।

फ़िल्म कम्पनियों का जीवन

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जीवन की अकल्पित विविधताओं में जिए। व्यवहार ऐसा कि जहाँ एक ओर हितेच्छु मित्र-मण्डली बनी, वहाँ विरोधियों का दल भी खड़ा हुआ। हालाँकि वे संस्कृत का यह सुभाषित जानते थे—'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' परन्तु वे हमेशा अप्रिय सत्य ही बोलते रहे। उनका फ़िल्मी जीवन भी कोई अपवाद नहीं था। यहाँ भी दो वर्ग—एक वर्ग द्वारा सराहनाएँ मिलीं, तो दूसरे वर्ग द्वारा अति अश्लील हो जाने की निन्दाएँ।

'उग्र' पहली बार फ़िल्म-कम्पनियों से जुड़े सन् 1925 में। उन्हीं के कथन के आधार पर यदि उनके प्रथम फ़िल्मी जीवन की अवधि निर्धारित की जाए, तो वह लगभग चार महीने की हो सकती है। ये चार महीने गुज़रे फ़िल्म उन्माद में। अवस्था थी 26 वर्ष, क़द काठी और सौन्दर्य का आकर्षण भी कम नहीं था। अविवाहित जीवन की भावाकुलता थी, रामलीला मण्डलियों से प्राप्त नृत्य-गान और अभिनय का अनुभव था। साइलेण्ट फ़िल्म कम्पनियों के लिए जिन संचारी-अन्तर्भावों की आवश्यकता थी वे सभी उनमें कलात्मक रूप में विद्यमान थे। इसलिए उन्हें सफलता तो मिलनी ही थी। सफलता की इसी आसक्ति में वे भूल गए कि उनका पीछा कर रहा था 'स्वदेश' के विस्फोटक सम्पादन के लिए गोरखपुर से राजद्रोह के अपराध में जारी वारण्ट। स्वयं उन्होंने लिखा था,

> "सामने थी बम्बई फ़िल्म-कम्पनी, शराब, कबाब और जनाब क्या बतलाऊँ! मैं भूल ही गया जवानी के जोश में कि प्राणों के पीछे वारण्ट था, जिसमें फँसने पर बड़ी-से-बड़ी सज़ा भी सहज ही मिल सकती थी।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 133)

'उग्र' जब मतवाला मण्डल से वारण्ट के डर से मुम्बई भागे थे, तब उनके एक भ्रातृवत मित्र भगवती प्रसाद मिश्र उनके आश्रय बने। मिश्र जी उस समय एक मूक चलचित्र कम्पनी के डाइरेक्टर थे। मिश्र जी का पता-ठिकाना ढूँढ़ते-भटकते 'उग्र' अकस्मात नाथूराम जी प्रेमी से मिल गए जो हिन्दी पुस्तकों के विख्यात प्रकाशक थे। वे कहानीकार 'उग्र' को भलीभाँति इसलिए जानते थे कि उनकी चाकलेट-कहानियों की धूम मुम्बई में भी कम नहीं थी। प्रेमी जी ने उन्हें अपने घर का सम्मानित अतिथि बनाया। परन्तु उनके पास स्थान का काफ़ी अभाव था, इसलिए उन्होंने अपने पुत्र हेमचन्द मोदी के साथ 'उग्र' को लालचन्द सेठी के घर भेज दिया। सेठी जी मुम्बई के जानेमाने धनाढ्य व्यक्ति थे। इनके यहाँ तरह-तरह के लोगों का दरबार लगा करता था और वे तथा उनका पूरा दरबार चाकलेट-कहानियों के लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को भलीभाँति जानते थे। 'उग्र' जी सेठी जी के 'भूलेश्वरवाली कोठी' में रहने लगे—न स्थान की कमी और न ही खान-पान का अभाव।

एक दिन इन्हीं सेठी जी के साथ 'उग्र' जी भगवती प्रसाद मिश्र के यहाँ गए। मिश्र जी ने स्वागत किया और अपनी साइलेण्ट फ़िल्म कम्पनी में काम करने की व्यवस्था कर दी। 'उग्र' द्वारा वर्णित एक प्रसंग से ऐसा लगता है कि वे फ़िल्म कलाकार के रूप में तत्काल प्रसिद्ध हो गए थे। उन्होंने लिखा है—'मैं अपनी ही लिखी किसी कहानी का कोई रूप भरे पर चलते मुहल्ले फ़ोर्ट में, चमचम सुनहले कपड़ों और गम-गम पाउडर से सज्जित नाटक कर रहा था। मेरे पीछे मित्र कलाकारों का एक दल था, दो तीन मोटरें भी और जहाँ मेरा चित्र लिया जा रहा था, किसी बड़े ऑफ़िस के सामने, वहीं एक दूसरी मोटर एकाएक आ रुकी और उसमें से निकले रायबहादुर श्रीयुत् लालचन्द जी सेठी। उन्होंने पहले मुझे देखा या सुनहले ड्रेस-पाउडर को, कह नहीं सकता, मगर पहचाना तुरन्त, पूछा—"'उग्र' जी! यह कैसा स्वांग है?" मैंने जवाब दिया—"स्वांगों के संसार में एक स्वांग मेरा है तो दूसरा आपका।" इस पर तुरन्त ही वे अपनी राह बढ़े और मैं 'कैमरा' के सामने एक्टिंग करने लगा।' ('सेठ, सेठी और सेठुल्ले', लेखक उग्र, हिन्दी स्वराज, खण्डवा, फ़रवरी, सन् 1941)।

मुम्बई में 'उग्र' जी का 'मदभरा-गर्वीला' फ़िल्मी जीवन केवल चार महीने ही रह सका, क्योंकि वे ताज़ीराते हिन्द दफ़ा 124 (।) के जुर्म में गिरफ़्तार हो गए और गोरखपुर भेज दिए गए।

फ़िल्मों में दूसरी बार

अगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के सम्पूर्ण जीवन का विश्लेषण किया जाए, तो बिना किसी मतभेद के कहा जा सकता है कि कथा-लेखन उनका आत्म-प्रक्षेपण था, पत्रकारिता उनके रचनात्मक चिन्तन की यात्रा थी और रंगमंच उनका मनोविनोद था। इसी मनोविनोद की तलाश में वे एक बार फिर मुम्बई की फ़िल्मी ज़िन्दगी से जा जुड़े। सन् 1930 शुरू ही होनेवाला था कि वे कलकत्ता से मुम्बई आ गए। 'मैं पुनः फ़िल्म कम्पनियों में चला गया। सन् 30 से 38 तक मैं फ़िल्मों में लिखता रहा और मस्तियाँ लेता रहा।' (*अपनी ख़बर*, पृ. 134)। यानी कि आठ वर्षों तक वे फ़िल्मी ज़िन्दगी में कुछ कर गुज़रने का संघर्ष करते रहे। मातृभूमि-सद्दूपुर की गली, चुनार, मिर्ज़ापुर के बाद सबसे अधिक दिनों तक वे मुम्बई के चलचित्र-जीवन में रहे। 'उग्र' को कहीं भी पाँव टिकाकर रहना रास नहीं आया था। लेकिन मुम्बई के परिवेश ने उन्हें लुभाया। कुँआरे बेचन ने सन् 1925 में चार महीनों तक मुम्बई के जीवन का रस चखा था और बेबाक शैली में उसे शब्द-बद्ध करते हुए लिखा था—"गृहस्थ बनी एक वेश्या मुझ पर आसक्त थी और एक अर्धवेश्या पारसीक परम सुन्दरी पर मैं बुरी तरह मोहित था।"' (*अपनी ख़बर*, पृ. 133)। दूसरी बार भी कुछ इसी प्रकार का मोह उन्हें आठ वर्षों तक आलिंगित किए रहा, क्योंकि वे तब भी कुँआरे-के-कुँआरे थे।

वे आठ वर्षों के दरम्यान मुम्बई में भिन्न-भिन्न जगहों पर रहे। 1929 में 'मतवाला' छोड़ते वक़्त उन्होंने सोचा था—"चलो बम्बई (मुम्बई) चलें; जहाँ अपार समुद्र के तट पर कोई पारसीक नारी हाथ में नारिकेल, चन्द्रमुखी, सूर्योपासना रत होगी। मैं पुनः फ़िल्म कम्पनियों में चला गया।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 134)।

'उग्र' दूसरी बार हिन्दी जगत में होनेवाले अपने विरोध से चिढ़कर फ़िल्म जगत में पहुँचे थे। उस समय मूक चलचित्रों का स्थान बोलते चित्र ले रहे थे। उनके लिए यह नया अनुभव था। दूसरी बार आकर वे टाकीज़ से जुड़े। सन् 1931 में वे शारदा फ़िल्म कम्पनी से जुड़े। सिन्धी प्रेमियों की एक लोक-कथा के आधार पर लिखी उनकी एक कहानी का फ़िल्मांकन जर्मन रेकार्डिंग मशीन पर किया गया, लेकिन मशीन की ख़राबी के कारण ध्वन्यंकन ऐसा बिगड़ा कि पूरी फ़िल्म फ़्लॉप हो गई। कम्पनी की रीढ़ टूट गई। चलचित्र का नाम था—'शशि-पुन्नू' जिसकी नियति के साथ चलचित्र के प्रोड्यूसर भोगीलाल भाव जी और डाइरेक्टर नगेन्द्र मजूमदार के सितारे भी डूब गए।

'शशि-पुन्नू' की असफलता से 'उग्र' जी निराश नहीं हुए थे, क्योंकि नाकामयाबी का कारण न उनका संवाद-लेखन और न ही उनकी कहानी। उन्होंने शारदा फ़िल्म, प्रतिमा पिक्चर्स फ़ोटोफ़ोन, महालक्ष्मी फ़िल्म कम्पनी और नेशनल स्टूडियो के लिए कहानियाँ और संवाद लिखे। उनकी कहानियों और संवाद पर बनी फ़िल्में—'रामविलास' 'पतितपावन', 'राधामोहन', 'नन्दलाल' और 'छोटी बहू' काफ़ी सफल रहीं। महालक्ष्मी फ़िल्म कम्पनी द्वारा बनायी गई फ़िल्म बॉक्स ऑफ़िस पर हिट हुई थी, परन्तु इसकी कहानी शैदा की थी, केवल संवाद 'उग्र' द्वारा लिखे गए थे। महालक्ष्मी फ़िल्म कम्पनी की सफलता का आलम यह हुआ कि 'उग्र' के अलग होने के बाद इसमें प्रेमचन्द कहानी लिखने लगे थे।

'छोटी बहू' की सफलता के बाद मुम्बई की फ़िल्म कम्पनियों में 'उग्र' की तूती बोलने लगी। दुर्गा खोटे, मामा गोरे, जयराज, जुबेदा बानू, मास्टर मोदक और नलिनी जयवन्त जैसे विख्यात कलाकार तक 'उग्र' के संवादों पर भूमिकाएँ निभाते हुए प्रसन्न होते थे।

मुम्बई फ़िल्म जगत में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' 'लड़ाका' और 'अश्लील' दोनों रूपों में आलोचना के पात्र बने। फ़िल्म कम्पनियों के कई प्रोड्यूसर इन्हें टैजेण्ट कहने लगे। हालाँकि उन्हें फ़िल्मी दृश्यों में थोड़ी-बहुत अश्लीलता से परहेज़ नहीं था, परन्तु वे कला के नाम पर किए जानेवाले अनाचारों का जमकर विरोध करते थे। वे कहानी लेखक की हैसियत से प्रायः डाइरेक्टरों को ललकार देते थे।

'उग्र' द्वारा लिखी कहानियों की अश्लीलता के सन्दर्भ में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने सन् 1934 में एक लेख 'विशाल भारत' में प्रकाशित करवाया था। उसमें चतुरसेन जी ने लिखा था,

"'उग्र' जी सन् 1933 में बम्बई (मुम्बई) की सागर फ़िल्म कम्पनी के लिए

कहानियाँ लिखते थे। उनकी ये फ़िल्मी कहानियाँ अत्यन्त अश्लील होती थीं। शास्त्री जी ने मुम्बई में दस वर्ष बाद एक शूटिंग दृश्य का वर्णन करते हुए लिखा था—'सागर फ़िल्म कम्पनी गया। रात को शूटिंग हो रही थी, वह भी देखा। 'उग्र' की कहानी थी, 'उग्र' जी स्वयं हाज़िर थे। देखते ही पास आ बैठे और पानों का बण्डल पेश किया। गिलौरियों पर सोने के वर्क़ चढ़े थे।' मैंने हँसकर कहा—'सोने के वर्क़ चढ़ी गिलौरियों में आप हिन्दी साहित्य को भूल गए।' कहने लगे—'अजी, अश्लीलता के नाते हम-आप साढ़ू हैं। मैं तो इस नई विद्या का अध्ययन करता हूँ, हिन्दी साहित्य को आप सँभालिए। फ़िल्म के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें हुई। उस दिन 'उग्र' की 'प्रतिमा' बन रही थी।"

'उग्र' द्वारा चतुरसेन शास्त्री से यह कहा जाना कि 'हिन्दी साहित्य को आप सँभालिए'—एक तीखा व्यंग्य था। 'उग्र' हिन्दी साहित्य के गद्दीधरों से आहत होकर ही फ़िल्म कम्पनी में भागे थे। इसका संकेत देते हुए *अपनी ख़बर* में उन्होंने लिखा था—"मैंने सोचा परे करो इस हिन्दी को। चरने दो उन्हें, जिन्हें चर्रा रही है मेरी चर्चा—चलो बम्बई (मुम्बई) चलें।" (पृ. 134)

अगर ध्यान से देखा जाए तो चतुरसेन शास्त्री की चिन्ता अकारण नहीं थी। 'उग्र' की फ़िल्मी यात्रा ने उनका कम नुक़सान नहीं किया, लगभग उनके चरम-रचनाकाल का एक दशक होम चढ़ गया। वे फ़िल्म-जगत में जाकर पछताए, परन्तु अपने सृजन के खाते से आठ वर्ष घटाने के बाद। उनके फ़िल्मी जीवन और उस अवधि की मनःवेदना का विस्तृत वर्णन 'सिनेमा संसार और मैं' लेख में हुआ है। यह लेख उन्होंने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 27 फ़रवरी, 1955—फ़िल्म गोष्ठी विशेषांक' के लिए लिखा था।

फ़िल्म-जगत से मध्यभारत हिन्दी-साहित्य समिति में

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने बड़ी साफ़गोई से अपनी ख़बरें दी थीं। अपनी ख़बर देते वक़्त न कहीं कुछ छिपाया, न कहीं आत्म-प्रशंसाओं के भूखे बने और न कहीं जीते-जी या मरणोपरान्त बदनामियों के डर से काँपे-फिसले। उन्होंने अपने पूरे व्यक्तित्व को आत्मकथा की राह पर बेनक़ाब खड़ा किया।

हालाँकि अपनी ख़बर में 'उग्र' के फ़िल्मी-जीवन के सन्दर्भ में बहुत कम है, परन्तु फिर भी सूत्र जोड़ने के संकेत तो हैं ही। इसी क्रम में उन्होंने लिखा था—

> "सन् 30 से 38 तक मैं फिल्मों में लिखता रहा। इसके बाद भागकर पहली बार मैं मालवा इन्दौर गया।" (*अपनी ख़बर*, पृ. 134)

'उग्र' जी के उक्त कथनानुसार वे सन् 1939 के प्रारम्भिक महीनों में मालवा

इन्दौर पहुँचे थे, परन्तु साक्ष्य ऐसे मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे सन् 1940 के पहले मालवा नहीं गए थे। एक साक्ष्य है 'खण्डवा' से प्रकाशित होनेवाला हिन्दी 'स्वराज' साप्ताहिक। इस साप्ताहिक में उनका एक लेख छपा—'एक साल की तपस्या'। 'स्वराज' में धारावाहिक रूप से छपनेवाले उनके लेखों की यह दसवीं क़िस्त थी, जो आठ फ़रवरी, 1941 वाले अंक में शाया हुई। इस क़िस्त में उन्होंने लिखा था :

> "सन् 1939-1940 के दिसम्बर-जनवरी महीनों में मैं बम्बई (मुम्बई) की चौपाटी के एक फ़्लैट में रहता था और 'नेशनल स्टूडियो' की एक कहानी का डायलॉग (संवाद) लिख रहा था। मगर जी मेरा बम्बई से उचटा हुआ था—वही मज़ों की अधिकता से। सोचा, चलूँ चन्द दिन इन्दौर की हवा खाता आऊँ। इन्दौर में मेरे दो प्रकाशक हैं, उनसे पुस्तकों की 'रॉयल्टी' का हिसाब भी समझना था। ठहरने का विचार समिति में था, क्योंकि एक साल पहले वह संस्था मेरे दिल में घर कर चुकी थी। 'वीणा' विभाग से साहित्यिक गतिविधियों का पता भी मज़े में चल सकता है। केवल इन्हीं कारणों से मैं यहीं पुनः आ ठहरा।" ('उग्र' का कटिंग संग्रह, पृ. 42)

'उग्र' द्वारा 'स्वराज' की कतरनों के संग्रह से प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वे फ़रवरी 1940 में मालवा-इन्दौर गए थे। इन्हीं कतरनों के साक्ष्यों से यह भी जाना जा सकता है कि वे 'मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति' के भवन में 'वीणा' के प्रबन्धक दामोदर दास द्विवेदी के परिवार के साथ रहने लगे और लगभग एक वर्ष तक कष्ट झेलते हुए भी उसी भवन में बने रहे। अपने लेख 'एक साल की तपस्या' में उन्होंने फ़रवरी, 1940 से जनवरी, 1941 तक का माहवार विवरण दिया था। जनवरी, 1941 के विवरण की चन्द शुरुआती पंक्तियाँ थीं :

> "दो-तीन नोटिसें मिलने पर भी सन् 1940 में मैं समिति भवन न छोड़ सका। कुछ अर्थाभाव लेकिन बहुत कुछ समिति सुधार के इरादे से। प्रेस-प्रकाशन-पुस्तकालय-पत्रिका-प्रचार-पढ़ाई ईश्वर की कृपा से सभी कामों को मैं कमी वेशी योग्यता से कर सकता हूँ बिना वेतन के मोह के। ऐसा मैं सन् 1940 के अन्त से ही महसूस कर रहा था।" (कतरनों का संग्रह, पृ. 46)

मध्यभारत हिन्दी साहित्य-समिति में रहते हुए पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने कुछ दिनों तक समिति द्वारा संचालित विद्यालय में बड़ी योग्यतापूर्वक पढ़ाने का काम किया। कुछ थोड़े ही दिनों में उन्होंने विद्यालय को साहित्य का यथार्थवादी स्कूल बना दिया। सहायक सम्पादक के रूप में उन्होंने 'वीणा' (मासिक) को नया कलेवर प्रदान किया। दस महीनों के दरम्यान चार विशेषांक निकाले, जिनमें 'होलिकांक' को 'मतवाला' वाला टोन, तेवर और प्रभाव प्रदान किया।

'उग्र' ने समिति भवन में रहते हुए केवल साहित्यिक कार्य ही नहीं किए, बल्कि भवन को सुसज्जित करने और भवन में रहनेवाले कर्मचारियों की सुविधाओं

के विस्तार के लिए भी अनेक प्रयत्न किए। सन् 1940 की बरसात आते ही अपने निजी खर्च से भवन की परती ज़मीन को जोतवा दिया और आकर्षक उद्यान लगवा दिया। यह उनकी सौन्दर्य-रुचि का अभिनव संक्रमण था, साहित्य-भवन में मुम्बई के चलचित्र भवन के समारोपण की प्रबल उग्रेच्छा थी। उन्होंने लिखा था :

> "अब आकर कोई देखे, मैंने सारी समिति जुता डाली है, झाड़-झंखाड़ ऊखाड़ फेंके हैं और दर्ज़नों दुर्दल और कंटकी और रद्दी दरख़्तों को कटवा चुका हूँ। मेरी अर्ज पर समिति के दरिद्र कुएँ की मरम्मत करा दी गई है।" (वही संग्रह पृ. 46)

मध्यभारत हिन्दी साहित्य-समिति को सही अंजाम देने, उसके उद्देश्यों को रचनात्मक धारा से जोड़ने और उसे एक आदर्शात्मक संस्था के रूप में ढालने के प्रयत्नों में 'उग्र' को तमाम प्रभावशाली व्यक्तियों का विरोध झेलना पड़ा, लेकिन वे हार मानकर बैठे नहीं। वे होलकर राज्य के महामन्त्री कर्नल श्री दीनानाथ जी साहब से मिले। समिति के सुधार की योजनाएँ प्रस्तुत कीं। इसका परिणाम सकारात्मक रहा।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' 1940 से लेकर सन् 1945 तक इन्दौर, उज्जैन और खण्डवा में रहे और संघर्षपूर्ण तथा अभावात्मक जीवन जीते रहे। उनकी उग्रता हमेशा उनके मार्ग में रोड़े अटकाती रही। हालाँकि उन्होंने 'वीणा' और 'विक्रम' का सम्पादन बड़ी कुशलतापूर्वक किया था, परन्तु मध्यभारत हिन्दी साहित्य-समिति के प्रधानमन्त्रियों की खुली आलोचना करने के कारण वे उन पत्रिकाओं में बहुत दिन नहीं टिक सके। उन्होंने जौहरी लाल जी मीतल, रायबहादुर भँवरलाल सेठी, रायबहादुर लाल चन्द्र सेठी, सर सेठ हुकुम चन्द जी और राय बहादुर सेठ हीरालाल जी कासलीवाल को खुली चिट्ठियाँ लिखीं और 'हिन्दी स्वराज' में उनका प्रकाशन कराया। उनके पत्रों के प्रहार से पं. खयालीराम वैद्यराज, रायबहादुर डॉ. एस. एच. पण्डित, रायबहादुर सरदार माधव विनायक किबे और पं. कमलाशंकर भी नहीं बचे।

'उग्र' के कठोर पत्रों के उत्तर या तो दिए ही नहीं गए या जो दिए भी गए, उनमें किसी भी महानुभाव ने उग्र-शैली का प्रयोग नहीं किया। एक-दो उत्तर ऐसे भी दिए गए, जिनमें 'उग्र' के कृतिकार व्यक्तित्व को काफ़ी सराहा गया। यहाँ रायबहादुर श्री लालचन्द सेठी के एक पत्र का उल्लेख करना इसलिए अप्रासंगिक न होगा कि इससे 'उग्र' के सृजनशील व्यक्तित्व को समझना-समझाना ज़्यादा आसान हो सकता है :

(श्री लाल चन्द सेठी का पत्र)

प्रिय 'उग्र' जी, विनोद भवन, उज्जैन

धन्यवाद! चिरकाल के पश्चात् आपका ताः 7-3-41 का पत्र मिला, जिसके लिए यह जानकर दुःख हुआ कि पाँव में फिसल जाने से चोट आ

गई है। आशा है, उचित उपचार से अब उसमें आगम होगा। लिखिएगा।

मुझे यह पढ़कर आश्चर्य हुआ कि मैंने आपके किसी परिचित से आपको गालियाँ दिलवाने के लिए आपकी शिकायत की है और उसे आपने अपने लिए अपमानजनक समझा है। किन्तु मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ वह बात प्रथम तो सहज स्वभाव से कही गई है, जिसमें मेरी अपमान करने की लेशमात्र भी भावना नहीं थी। दूसरे, मेरे हृदय में किसी के भी अपमान की भावना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बहुत ही कम आती है, फिर आपके प्रति तो वह कैसे सम्भव है, जो मेरे चिरपरिचित और विशेष अभिरुचिवाले साहित्यकार हैं।

आपने लिखा है कि—'मालवा आपका मुहल्ला है—हम परदेसी हैं—आप सब कुछ कर सकते हैं।' परन्तु अब तक तो ऐसा नहीं हुआ है। फिर आप एक प्रकार से हमारे घर ही आए हैं। अतएव अतिथि रूप में आप भला-बुरा जो कुछ भी कह रहे हैं, वह सब अब तक मेरे लिए शिरोधार्य ही रहा है।

आपका मेरा पुराना स्नेह है। क्योंकि साहित्य और साहित्यिकों के प्रति मेरे हृदय में आरम्भ से ही अनुराग रहा और अब भी है। आपके साथ विशेष स्नेह होने से ही जब-जब मैं कलकत्ते गया, आपसे बराबर मिला। साहित्य-चर्चा ही आपके मेरे स्नेह बन्धन को बाँधनेवाली रही है, क्योंकि आपकी लेखन-शैली मुझे बहुत पसन्द है और इसीलिए मैंने हमेशा उसकी प्रशंसा की है। बम्बई में भी आपका मेरा रात और दिन का सहवास रहा, किन्तु मुझे आश्चर्य है कि उन मधुर स्मृतियों को आपने एकदम ही भुला दिया और बिना विशेष कारण के ही अपने विचार प्रवाह को विरुद्ध दिशा में प्रवाहित करना आरम्भ कर दिया।

मेरी दृष्टि में साहित्य की विचारधारा सरिता के स्वच्छ-जल प्रवाह के समान है। अतः साहित्यकार एक सुन्दर सरोवर की भाँति होने चाहिए। सरिता का प्रवाह उचित रूप में योग्य दिशा की ओर प्रवाहित होता है। तो उससे मानव समाज को अनेक प्रकार से लाभ पहुँचता है और वह लोक कल्याणकारी ही सिद्ध होता है। किन्तु जब वही प्रवाह अनियमित मार्ग से बहने लगता है, तो अनेक प्रकार से हानि का ही कारण बन जाता है।

समिति के उद्धार के लिए आप कटिबद्ध हुए हैं, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है, किन्तु आपने जो मार्ग ग्रहण किया, उससे मैं सहमत नहीं हूँ। अब तक आपने प्रायः सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ही अपनी विचार-भित्ति का निर्माण किया है। प्रत्यक्ष लोक व्यवहार में भाग लेकर वैसा किया जाता, तो उसका कुछ और ही स्वरूप होता। मैं चाहता हूँ कि अब भी आप प्रत्यक्ष

अनुभव करें। यदि ऐसा करें, तो आपको निश्चय ही अपने विचार बदलने पड़ें।

इन्दौर जैसे विशाल नगर में—जहाँ धनिकों की कमी नहीं है और नवीन लक्ष्मी पात्रों की सृष्टि भी सामाजिक परिस्थिति के कारण अच्छी निर्माण हुई है—यदि आपकी क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित होकर विशेष दानी अपनी मातृभाषा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने को तैयार हो जाएँ अथवा आपकी प्रभावशालिनी भाषा, मातृ-भाषा प्रेमियों की हृदयतन्त्री को झंकृत कर आपकी उद्देश्य-पूर्ति में सहायक हो सके, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मैं चाहता हूँ कि आप अवश्य ही इस ओर भी प्रयत्न करें। तब बहुत सम्भव है आप वस्तु-स्थिति भिन्न ही देखेंगे, जैसी कि आप देख रहे हैं।

मनुष्य जब तक मनुष्य है, सदोष है। उसमें भी मेरे जैसा तो इस दृष्टि से अपने को बहुत सदोष मानता है। मैं जो कुछ था और हूँ उसमें परिस्थिति और घटना-चक्रों ने बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है। मैं समझता हूँ, इन दिनों मेरे लिए आपने बहुत कुछ सुना होगा और वह भी कई प्रकार की बुराई को लेकर—न मालूम कितने बड़े-बड़े रूपों में! बहुत सम्भव है, उन्हीं पर से आपने अपनी सम्मति निर्धारित की हो।

ईश्वर ने आपकी लेखनी में शक्ति दी है। आपने खूब पढ़ा और लिखा भी है तथा सैर सपाटे करके दुनिया का अच्छा अनुभव कर लिया है। ऐसी दशा में अब आप में और विशेष कर आपकी लेखनी में सहनशीलता होनी चाहिए और भारतवर्ष में जहाँ झगड़ों की, विवादों की और वैमनस्य की कमी नहीं है उसे मिटाने के लिए सहनशीलता और शक्ति का सन्देश देते हुए उग्रता (शीघ्रता) से बढ़ना चाहिए। मेरी तो ऐसी ही आकांक्षा है। आगे जैसी आपकी इच्छा।

लक्ष्मी बुरी मानने की वस्तु तो नहीं हैं। स्वयं भगवान ने श्री सरस्वती के साथ-साथ उसे भी अपनाया है। इस विषय में भी आप जैसे साहित्यकार को तो आजकल के सामान्य लेखकों की अपेक्षा बहुत ऊपर की स्थिति में देखने की आशा की जा सकती है।

'विमल-हॉल' के लिए आपने लिखा सो मैं 'समिति' में उसकी विशेष आवश्यकता नहीं समझ रहा हूँ। परन्तु आपने तो उसे विचार-विनिमय बनने के पहले ही साहित्यिक अखाड़े में उतरकर सफ़ाई के हाथ दिखाना आरम्भ कर दिया—अब तक के परिचय और स्नेह को जला-सा दिया, ख़ैर। चिकनाहट अभी आपके हृदय में शेष है, तो स्नेह का दीपक फिर भी प्रज्वलित होगा। इस पत्र को मैं उसी स्नेह का द्योतक समझता हूँ।

आपने अपने-अपने आमालनामों का हिसाब देने की जो बात लिखी

है, सो हमलोग तो व्यापारी होने के कारण सदैव हिसाब-किताब तैयार रखते हैं और वैसे सच्चा आमालनामा तो यमराज के सामने ही हो सकता है। पत्र देवें। प्रसन्नता के समाचार लिखें।

—आपका, लालचन्द सेठी

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने एक पोस्टकार्ड द्वारा सेठी जी के पत्र का उत्तर इस प्रकार दिया—

इन्दौर

श्रीमान सेठी जी! 18-3-41

बेशक, वर्तमान परिस्थिति में 'विमल-भवन' की कोई ज़रूरत नहीं; ज़रूरत होने पर विचार-विनिमय के लिए जो द्वार-मुक्त होने की आपके पत्र में सूचना है—तदर्थ धन्यवाद!

आपका पत्र हिन्दी 'स्वराज' में प्रकाशित होने जा रहा है—मेरी चिट्ठी के साथ जनसाधारण के हितार्थ। उसके प्रकाशन से आपका मान बढ़ेगा—उग्र।

और 'उग्र' ने अपने दोनों पत्रों के साथ सेठी जी के पत्र को 'स्वराज' में प्रकाशित कर दिया। यहाँ 'उग्र' के व्यक्तित्व और कृतित्व के परिमापन के लिए सेठी के पत्र को तराजू के दूसरे पलड़े के रूप में देखा जाना चाहिए।

'उग्र' ने 17 जुलाई, 1942 को भँवर लाल सेठी के पास एक तीखा पत्र भेजा, क्योंकि उस समय भँवर लाल जी ही मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति के प्रधानमन्त्री का दायित्व सँभाल रहे थे। 'उग्र' जी के पत्र के बाद समिति के मन्त्रिमण्डल की बैठक हुई और इसमें 'उग्र' के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किए गए।

1. एकांकी नाटक के संयोजकत्व से 'उग्र' जी पृथक् किए जाएँ।
2. भविष्य में श्रीयुत् 'उग्र' जी की कोई रचना—लेख या कविता—'वीणा' में प्रकाशित न किया जाए।

'उग्र' को समिति की सदस्यता से तो वंचित कर ही दिया गया, साथ ही समिति-भवन में रहने की सुविधा भी छीन ली गई। ('वीणा' अगस्त, 1941 पृ. 120-121)

इस प्रकार मध्य प्रदेश की साहित्यिक राजनीति में घुटने-थकने के बाद 'उग्र' सन् 1945 में पुनः मुम्बई लौट गए। वहाँ 'विक्रम' और 'संग्राम' का सम्पादन-दायित्व सँभाला। वे दोनों साप्ताहिक पत्र थे, परन्तु इनमें भी सफलता नहीं मिल सकी। फिर भी वे लड़ते-जूझते रहे और तब तक मुम्बई में रहे, जब तक देश को आज़ादी नहीं मिल गई।

स्वतन्त्रता मिलने के लगभग चार महीनों बाद 'उग्र' गऊघाट, मिर्ज़ापुर आ

गए। 'मतवाला' बन्द हो चुका था। अपने सम्पादन में उन्होंने लगभग बारह-तेरह महीनों तक 'मतवाला' का प्रकाशन शुरू किया, लेकिन इसकी गाड़ी भी ज़्यादा दिन तक नहीं चल सकी। वे फिर कलकत्ता चले गए लेकिन कलकत्ते के दिन भी मस्तमौला साहित्यकार के लिए प्रतिकूल ही रहे। 'उग्र' ने लिखा था,

"सन् 1950, 51, 52 कलकत्ते में बहुत बुरी तरह कटे।"

वे 1953 के अन्त में दिल्ली आ गए। वहाँ भी 'हिन्दी-पंच' और 'उग्र' नामक पत्रों का सम्पादन करना शुरू किया, परन्तु इनमें भी बहुत कम सफलता मिली।

'उग्र' ने दिल्ली की ठौर-ठिकानों का विवरण देते हुए लिखा था—"दिल्ली सब्ज़ी मण्डी, पंजाबी बस्ती में रहा 7-8 महीने। फिर तीन साल से ज़्यादा लोदी बस्ती में बसा। तीन ही बरसों से इधर जमुना पार कृष्णनगर में रह रहा हूँ।" धीरे-धीरे उनके जीवन के अन्तिम दिन नज़दीक आने लगे और अन्ततोगत्वा ताउम्र कुँआरे पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को मृत्यु ने 23 मार्च, 1967 को वरण कर लिया। इस प्रकार सद्दूपुर की पैदाइश कृष्णनगर में जाकर ख़त्म हुई। पैदा होने से लेकर जीवन के आख़िरी क्षण तक संघर्ष-प्रतिसंघर्ष करनेवाले साहित्यकार के लिए 66 वर्ष, 2 महीने और 24 दिनों की ज़िन्दगी कम नहीं कही जा सकती।

3

'उग्र' की कविताएँ

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कविताएँ उनकी देशभक्ति और भारतीय स्वतन्त्रता के लिए किए जानेवाले उनके संघर्ष की काल-गाथा हैं। अभी तक उनकी सभी कविताओं के संकलन नहीं प्रकाशित हो सके हैं। वे 'आज' (दैनिक), 'स्वदेश' (साप्ताहिक), 'मतवाला' (साप्ताहिक) आदि पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। परन्तु उनका एक खण्ड काव्य *ध्रुव-धारणा* (ध्रुवचरित) का प्रकाशन काशी के 'भूमिहार ब्राह्मण प्रेस' से सन् 1921 में हुआ था। यह एक बहुत छोटा खण्ड-काव्य था, मुश्किल से बीस-पच्चीस पृष्ठों का। प्रारम्भिक रचना होने के कारण इसमें त्रुटियाँ बहुत थीं—ख़ास तौर से छन्द-विधान की दृष्टि से। यह रचना *प्रियप्रवास* से प्रभावित होकर वर्णवृत में लिखी गई थी। इसके वर्ण-विन्यास और ध्वनि-सम्पात दोनों में ग़लतियाँ थीं, जिनका संशोधन लाला भगवान 'दीन' ने किया था। न यह पूरी तरह 'चरित काव्य' बन सका था और न ही यह 'उग्र' के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व कर सका था। फिर भी यह कहना असंगत न होगा कि इससे उनकी रचनात्मक ऊर्जा का परिचय अवश्य मिलता है।

'उग्र' की कुछ कविताएँ जो इधर-उधर बिखरी थीं *कंचनघट* शीर्षक से संकलित होकर सन् 1955 में प्रकाशित हुईं। एक काव्य-संकलन *पारिजातों का बलिदान* भी प्रकाशित हुआ। परन्तु अब भी 'मतवाला' और 'स्वदेश' में छपी दर्ज़नों कविताएँ असंकलित पड़ी हुई हैं। उन्होंने छद्म नामों से 'मतवाला' के लिए अनेक व्यंग्य कविताएँ भी लिखी थीं, जिनकी पहचान भी अब तक नहीं हो सकी है। मसलन उन्होंने 'कविता का ठेकेदार' छद्म नाम से व्यंग्य कविता लिखी—'अपने मुँह मिया मिट्ठू' (मतवाला : 27 दिसम्बर 1924 पृ. 5)। इसके माध्यम से उन्होंने अपने एक सहयोगी कवि पर ही व्यंग्य किया। सात बन्धों द्वारा। यहाँ इसके एक-दो बन्ध का उदाहरण रुचिकर हो सकता है—

मैं कवि हूँ—मैं ही कवि हूँ—लासानी हूँ।
मैं काव्य जगत का राजा औ रानी हूँ ॥

राजा बनकर मैं रोब जमाता फिरता।
रानी बनकर मैं मटक-मटक कर चलता ॥
मैं अपना आसन सबके ऊपर जानूँ।
कवियों का हूँ सरताज, यही बस मानूँ ॥

'मतवाला' में जो 'उग्र' की कविताएँ प्रकाशित हुईं, वे केवल व्यंग्य ही नहीं थीं। सामाजिक सरोकार और नवजागरण को सार्थक अभिव्यक्ति देने के लिए भी उन्होंने अनेक कविताएँ लिखीं। उस समय गद्य-कविताओं का प्रचार बहुत कम था, परन्तु उन्होंने कई गद्य-काव्य भी लिखे। 'मतवाला' में गद्य-काव्य की शुरुआत रामनाथ लाल 'सुमन' ने की थी। बाद में 'उग्र' ने गद्य-काव्य के कथ्य और शिल्प में कुछ और भी नए प्रयोग किए। उनका गद्य-काव्य 'विप्लव गान' मतवाला के पाठकों द्वारा बहुत सराहा गया था। इस 'विप्लव गान' में उन्होंने अपने राष्ट्रधर्मी उग्रत्व को ही अभिव्यक्ति दी थी। मसलन उन्होंने लिखा–

"भैरवी जान पड़ता है तू उस 'भैरवराग' को भूल गई। संगीत विद्या की पण्डिता और भूल गई। आश्चर्य!! अपनी (भैरवी) गा-गाकर तू प्रभात को प्रकृति-प्रांगण में रोज़ ही बुलाती है और उसे बाल-दिवस बनाकर 'आसावरी' सुनाती है, दोपहर के समय, जब प्रभात पूर्ण युवा हो जाता है, तू 'सारंग' गाकर उस युवक पर मोह-रंग चढ़ाती है,...कभी भैरव राग क्यों नहीं गाती?" (मतवाला : 13 सितम्बर, 1924 पृ. 11)

लगभग पाँच सौ शब्दों का गद्य-काव्य लिखने के बाद 'भैरव-राग' की भावाभिव्यक्ति करते हुए मुक्त छन्द में एक कविता भी लिखी। शीर्षक दिया 'गान'। 'निराला' के 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' (मतवाला : 5 जन., 1924 मुखपृष्ठ) के नौ महीने बाद 'उग्र' का 'विप्लव-गान' पैदा हुआ। 'आवाहन' में 'निराला' निराला थे, 'विप्लव-गान' में 'उग्र' 'उग्र' हो गए। काव्य रचना के माध्यम से 'मतवाला' में 'निराला' और 'उग्र' का प्रतिद्वन्द्वी इतिहास मूर्त हुआ। यहाँ 'उग्र' के 'विप्लव-गान' का एक बन्ध (पहला) देखना अप्रासंगिक न होगा–

भैरवी नाच रही है,
व्याह में दानवता के!
सभी को मोह लिया है
राग विप्लव का गा के!
रणस्थल-रंगभूमि पर
        तना अम्बर-वितान है
रक्त-रेखाओं का दल
        सजा 'चौका' समान है!
भैरवी नाच रही है!!!

'निराला' और 'उग्र' के कविता-सम्बन्धों को समझने के लिए यहाँ 'आवाहन' और 'विप्लव-गान' की संवेदना-तरंगों और उनके ध्वनि-आवर्तनों की तुलना करना कम दिलचस्प नहीं हो सकता। यदि ग़ौर किया जाए, तो इन दोनों कविताओं द्वारा शैव और शाक्त आगमों की परम्परा में अष्ट भैरवों और अष्ट भैरवियों की प्रकृतियाँ समझने में भी मदद मिल सकती है। हालाँकि 'उग्र' 'निराला' नहीं हो सकते थे, परन्तु कालजयी काव्य सृजन के लक्ष्य से वे दूर नहीं थे।

यहाँ उल्लेख्य है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में 'भैरवी-नृत्य' शक्ति का प्रतीक बन गया था। 'उग्र' ने सन् 1921 में भी 'कामना' शीर्षक से 'विप्लव-गान' की ही भाव-भूमि पर एक कविता लिखी थी, जो काशी के 'आज' (दैनिक) में प्रकाशित हुई थी। उस समय क्रान्तिकारी भाव-भूमि पर 'त्रिशूल' (1833), माखनलाल चतुर्वेदी (1889), रामनरेश त्रिपाठी (1889), निराला (1897), अनूप शर्मा (1900) और सुभद्रा कुमारी चौहान 1905 आदि भी कविताएँ लिख रहे थे। 'उग्र' (1900) की 'कामना' शीर्षक कविता में भी मुक्ति के लिए क्रान्तिधर्म की वकालत की गई थी। जैसे—

भयंकर ज्वालाएँ
जाग उठे सब
और आग की हो जाए भरमार
मधुर रागिनी नहीं चाहते-
और न स्वर सुकुमार!
वज्रनाद-सा बोल उठे हम सबके उर का तार!

(*अपनी ख़बर*, पृ. 111)

अपनी क्रान्तिकारी कविताओं के लिए 'उग्र' अपने को 'रुद्र' का प्रतिनिधि मानते थे। उनकी काव्य-चेतना में 'उग्र-रूप...पिनाकी भूतनाथ श्री कपालभृत' जैसी कल्पनाएँ उठा करती थीं। उन्होंने अपनी "'उग्र' महाराज हैं" शीर्षक कविता का अन्त किया—

"तुम रुद्र हो तो हम 'उग्र' महाराज हैं।"

(मतवाला : 21 अगस्त, 1925 मुखपृष्ठ)

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की प्रारम्भिक कविताओं के केन्द्र में थे 'महात्मा गाँधी'। गाँधी जीवन के दर्शन से प्रेरित होकर ही उन्होंने देशभक्ति और राजनीति-धर्मी कविताएँ लिखी थीं। अगर ध्यान से देखा जाए, तो पता चलेगा कि द्विवेदीयुगीन बहुलांश काव्य प्रेरणा के मूल उपादान महात्मा गाँधी ही थे। मैथिलीशरण गुप्त से लेकर सुमित्रानन्दन पन्त तक कविता को गाँधीवादी आकार देने में लगे थे। राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सक्रिय संघर्ष करनेवाले 'उग्र' के लिए तो गाँधी जी सम्पूर्ण रचना-धर्म थे। जब वे (उग्र) विद्यार्थी थे, तभी उन्होंने 'गाँधी-जयन्ती' शीर्षक कविता

लिखकर अपने साहित्य-सृजन का श्री गणेश किया था। यह कविता 'आज' (30 दिसम्बर 1921) में प्रकाशित हुई और 'उग्र' एक कवि के रूप में विख्यात हुए।

ख़ास तौर से 'उग्र' की गाँधी-जयन्ती कविता महात्मा जी द्वारा संचालित ख़िलाफ़त मूवमेण्ट, चर्ख़ा-यज्ञ और स्वदेशी-आन्दोलन के समर्थन में लिखी गई थी, परन्तु इसका एक वैचारिक और आन्तरिक पहलू भी था। यह पहलू था इसका भाषाई विन्यास। गाँधी जी हिन्दी और उर्दू को एक दूसरे के साथ विन्यस्त करके हिन्दुस्तानी भाषा का प्रचार कर रहे थे। यह एक सुचिन्तित विचार था, जो भाषिक एकता के साथ ही मज़हबी एकता के लिए भी ज़रूरी था। 'उग्र' ने अपनी कविता के द्वारा गाँधी जी के भाषाई दर्शन को आम जनता के सामने रखने की कोशिश की थी। मिसाल के तौर पर कविता की दो-चार पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

नहा लें किसी पाक दरिया में जाकर,
वहाँ से जो लौटे ख़ुदा से दोआ कर
वतन हिन्द की आबरू को बचाएँ
चलो आज गाँधी-जयन्ती मनाएँ।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' स्कूली छात्रों में नवजागरण की युवा चेतना को अपनी कविताओं द्वारा व्यावहारिक परिणति देने लगे। छात्रों की सभाओं और राष्ट्रीय जनभावना के उद्वेलन के लिए निकाले गए जुलूसों में उनकी कविताएँ गाई जाने लगीं। बनारस का युवा वर्ग उनकी कविताओं के रस में डूब गया। गाँवों के लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए उन्होंने भोजपुरी बोली में गीत लिखे। देहात के चौपाल में इनके भोजपुरी गीत गाए जाने लगे। जैसे—

यारो अंगरेजवा कटारी मारे ना
देके जन धनवाँ, हरउली जरमनवाँ
सो बिसारे सारे ना!
'दिन-रात'— (विनोदशंकर व्यास, पृ. 79)।

'उग्र' ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हिन्दुस्तानियों के साथ अंग्रेज़ों की सरकार द्वारा की जानेवाली वादाफ़रामोशी पर सीधा प्रहार किया। अंग्रेज़ों की बद-दिमाग़ी और बदमिज़ाजी की भी खिल्ली उड़ाई। बिरहा लोकगीत लिखा—

गोरवा क लड़िका मसिनियाँ चलावला
करिखा रेहलिया क मुँह में लगावला
गाई-गोरु देखला त सिटिया बजावला
खावं-खावं करिके लड़िकवा डेरावला
टोंपवा के करला गुमान।

यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है कि गाँधी टोपी की नवजागरण चेतना के विरुद्ध साम्राज्यवादी 'हैट'—संस्कृति की बदमस्ती पर किया गया हमला कितना 'उग्र' था।

सन् 1920 से लेकर सन् 1924 तक 'उग्र' के लिए हिन्दी कविता का अर्थ था—देशभक्ति। वे कविता का शंखनाद कर निम्न मध्यवर्गीय जनता को जगाने लगे और भारतीय स्वतन्त्रता के लिए वैचारिक मोर्चा तैयार करने लगे। उन्होंने सन् 1924 तक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की लगभग तीन दर्ज़न कविताएँ लिखीं, जिनमें 'आह्वान' (स्वदेश : 11 अगस्त, 1919), 'भारत तिलक' (वही : दिस., 1919), 'कहाँ हो हाय तिलक महाराज' (वही : अगस्त, 1920), 'पंजाब-केसरी-स्वागत' (वही : 22 फ़रवरी, 1920), 'विजय कहाँ है?' (वही : 10 सित., 1921), 'चार आने' (वही : 11 अक्तू. 1921), 'भारत चन्द्रग्रहण' (वही : 16 अक्तू. 1921), 'जालियान' (वही : 13 अप्रैल, 1922), 'कर' (प्रभा : मई, 1922), 'सुख का पता' (प्रभा : नव., 1922), 'बन्दीगृह की वन्दना' (प्रभा : जन., 1923), 'कुमकुमै' (आज : 4 मार्च, 1923), 'सावधान' (वही : 16 मार्च, 1923), 'बताओ' (वही : 17 मार्च 1923), 'हड़ताल करो' (वही : 19 मार्च, 1923), 'सालिटरी सेल से' (मर्यादा : आषाढ़, 1922), 'दानवता' (प्रभा : अप्रैल, 1923), 'प्रस्ताव स्वीकार' (प्रभा : नव., 1923), 'पथिक' (मर्यादा : आषाढ़, 1922), 'श्मशान' (मर्यादा : भाद्रपद, 1922), 'भारत भ्रमण गीत' (आजः 21 मई, 1923), 'पवित्र पताका' (आज : 10 जुलाई, 1923), 'दीनवन्धु लेनिन' (आज : 5 फ़रवरी, 1924) और—'बापू के चरणों में' (आज : 7 फ़रवरी, 1924) शीर्षक कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं। इन कविताओं में साम्राज्यवादी शासन के प्रति बग़ावत, भारतीयों में देश के लिए क़ुर्बानी करने की भावना का जागरण, ग़रीबों और अत्याचार पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, स्वतन्त्रता-संघर्ष की बागडोर सँभालनेवाले नेताओं का महिमा गायन, अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों पर किए जानेवाले ज़ुल्म, राष्ट्रीय अतीत का गौरव गान, शहीद हुए नेताओं के लिए श्रद्धांजलियाँ और दमन-चक्र के साथ चलनेवाले इतिहास जैसे विषयों को तल्ख़ शैली में अभिव्यक्त किया गया था। भाषा खड़ी बोली परन्तु लोक क्षेत्र की भाषाई संवेदनाओं को समाहित किए हुए। समास, विराम-चिह्न और व्याकरण की शुद्धता के प्रति पूरी सजगता। छान्दिक अनुशासन का परिपालन, अर्थात् द्विवेदीयुगीन कविता का सम्पूर्ण रचना-धर्म मूर्त हुआ था। मिसाल के तौर पर 'स्वदेश' में प्रकाशित पहली कविता का प्रथम छन्द देखा जा सकता है—

ओ! आजा; आजा; विश्व मुक्तिदा, आ जा!
आबद्धों को उद्धार; युक्तिदा, आ जा!
इस भारत-भू से आरत शब्द हटा जा,

परमार्थ सिखा जा, स्वार्थ प्रपंच मिटा जा।
सब द्वेष शेष कर करुणा, क्लेश कटा जा,
निज कर्म-मही पर जी से हमें डटा जा।
ओ! दीनों को सुख शान्ति मुक्तिदा, आ जा। (11 अगस्त, 1919)

यह 'उग्र' की काव्य-रचना का पहला क़दम था। तब इस युवा कवि की उम्र थी 18 वर्ष 7 महीने की। 'शहीद मैक्स्विनी' से लगभग डेढ़ वर्ष पहले लिखी कविता थी। देखा जा सकता है कि अगर 'उग्र' कथा-क्षेत्र में न जाकर काव्य-रचना के क्षेत्र मे ही रह गए होते तो निश्चित रूप से अपने युग के बड़े कवियों में से एक होते। इसकी भी मिसाल अनुपलब्ध नहीं है। 'प्रताप' (कानपुर) द्वारा राष्ट्रीय गान-रचना प्रतियोगिता में उस युग के अनेक कवियों ने भाग लिया था। उन दर्ज़नों कवियों में जिन चार कवियों को पुरस्कृत किया गया था, उनमें 'उग्र' भी थे। शेष तीन थे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शंकर शर्मा, शिवराम शर्मा 'रमेश'। सभी कवियों को रुपये 51 की भेंट दी गई थी, परन्तु उन चारों में केवल 'उग्र' ऐसे कवि थे, जिनकी रचना को विशिष्ट घोषित करते हुए प्रतियोगिता के आयोजक वेणीमाधव खन्ना ने 251 रुपये का विशिष्ट पुरस्कार दिया था। ('आज' 9 जून 1921) स्पष्ट है कि 'उग्र' अपने युग के ख्यातिलब्ध कवि थे। परन्तु कहानी और उपन्यास-रचना के क्षेत्र में वे इस क़दर बड़े हो गए कि उनकी कविताओं का मूल्यांकन नहीं किया जा सका।

'उग्र' को 'राष्ट्रीय गान' शीर्षक कविता के लिए विशेष पुरस्कार केवल इसलिए नहीं दिया कि उसमें भारतवर्ष की सर्वतोभावेन अभिव्यक्ति की गई थी, बल्कि इसलिए भी दिया गया था कि इसके रचना-दर्शन में भारत के मानस-तत्त्व की सूक्ष्मताएँ निहित थीं। अतीत से वर्तमान तक की एकतानता थी। भाव-तत्त्व और शैली-तत्त्व दोनों में सृजन-दृष्टि का विन्यास हुआ था। टेक पद सहित सात पदों की कविता 'इमन ध्रुपद' और 'चार ताल' में निबद्ध थी। ध्रुपद का 'सानन्द' भेद था। अज्ञात नहीं है कि ध्रुपद अपने देश का प्रतिनिधि राग माना गया है। प्राचीन मन्दिरों में विशेषतः 'सानन्द ध्रुपद' ही गाए जाते थे। 'ध्रुपद के साथ 'इमन' का योग मध्यकालीन भारत की नई उपलब्धि था। यह भारतीय राग-दर्शन के साथ फ़ारसी का योग भी था।

भारत को एक मन्दिर मानकर 'उग्र' ने अपना राष्ट्रीय गान समर्पित किया था। इसमें हिन्दू-मुसलमान के एकता के स्वर उभरे थे। जैसे कि

जै अशोक, अकबर कर, जै प्रताप, शिव, सुखधर,
दरशन तब चहत अमर-अचल भूमि जै।
विमल भूमि जै ॥ (1921)

'उग्र' को राग-ताल और उनके लोकात्मक प्रभाव का व्यावहारिक ज्ञान रामलीला मंचों से मिला था। बाद में चलकर 'निराला' ने अपनी कविताओं में एमन ध्रुवपद का व्यापक प्रयोग किया, लेकिन सन् 1921 तक उन्होंने रागाश्रित कविताएँ नहीं लिखी थीं। देखा जा सकता है कि 'उग्र' देश काल और राष्ट्रीय आकांक्षा को ध्यान में रखकर ही कविता लिखते थे। माँग और पूर्ति की दृष्टि के तहत कविता लिखना उन्हें पसन्द नहीं था। वे हिन्दी कविता में भी नई ज़मीन तलाश करते-करते ही मरे। लेकिन उन्हें कवि के रूप में नहीं जाना जा सका। इसका कारण था उनके कहानीकार रूप का विराट् होना।

'उग्र' की अनेक कविताएँ 'मतवाला' में भी प्रकाशित हुईं। 'मतवाला' में आने के बाद उनके काव्य-सृजन-दर्शन में काफ़ी परिवर्तन हो गया। इसमें कविता-प्रकाशन की दो शैलियाँ थीं, पहली 'निराला' शैली और दूसरी छद्म नामों से लिखी जानेवाली व्यंग्य शैली। 'निराला' शैली के अन्तर्गत छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिशीलता से सम्बद्ध कविताएँ प्रकाशित होती थीं। व्यंग्य शैली में राजनीतिक विसंगतियों, ब्रिटिश शासन के अत्याचारों, पुरोहिती तथा महाजनी संस्कृति की लूट-खसोट-वृत्तियों, साहित्य-सेवा के नाम पर की जानेवाली चालाकियों, दुरभिसंधियों तथा धर्म के अधर्मीकृत आचरणों पर तीखा आक्रमण किया जाता था। 'उग्र' ने दोनों शैलियाँ अपनायीं। 'वैषम्य' (10 मई 1924 पृ. 1) और 'विप्लव-गान' (13 सित., 1924 पृ. 11) जैसी कविताएँ प्रथम शैली के अन्तर्गत लिखी गईं। दूसरी शैली व्यंग्य के लिए वे 'मतवाला' के प्रतिनिधि कवि बन गए। 'मुखमर्दन उर्फ़ चुम्बन' (6 सित. 1924), 'अपने मुँह मिया मिट्ठू' (27 दिस. 1924), 'उग्र' की कविता (7 जून 1925), 'टकाचन्द चरण' (30 मई 1925), और 'मदारी-रत्नाकर-संवाद' (27 अप्रैल 1929), जैसे दो-तीन दर्जन से अधिक व्यंग्य कविताएँ छपीं। इन व्यंग्य कविताओं में कोई-न-कोई संकेत ऐसा मिल जाता है, जिससे यह समझा जा सकता है कि ये 'उग्र' की ही कविताएँ थीं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' विविध शैली में हिन्दी कविताएँ तो लिखते ही थे, साथ ही ग़ज़लें भी लिखते रहे। ग़ज़ल-लेखन के प्रति आकर्षण तो काशी में विद्यार्थी जीवन से ही था, परन्तु 'मतवाला' में आने के बाद इस विधा में चार चाँद लग गया। 'मतवाला' के सम्पादक महादेव प्रसाद सेठ की प्रेरणा से उन्होंने 'ग़ालिब' और 'अकबर' का विशेष अध्ययन किया। इससे उन्हें उर्दू शैली की ग़ज़लें लिखने में दक्षता प्राप्त हुई। उन्होंने व्यंग्य-लेखन के लिए भी ग़ज़ल शैली का प्रयोग किया। कुछ नाम से और कुछ छद्म नाम से उनकी ग़ज़लें इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं। कुछ ग़ज़लें उनकी नाट्य-रचनाओं, एकांकियों और उपन्यासों में भी उपलब्ध हैं। मसलन उनकी प्रथम नाट्य-कृति *महात्मा ईसा* (अगस्त, 1922) में एक-दो ग़ज़लें। इन ग़ज़लों में उनकी लेखन-दृष्टि स्पष्ट देखी जा सकती है—

रूप पाया है वहाँ से जो लुटा देना यहाँ,
संग दिल हो न दिले-तंग बना देना यहाँ।
कण्ठ में स्वर जो चुरा लाये हो वीणा का भला
देख उत्कण्ठितों को आप सुना देना यहाँ।
आँख में तुमने भरे दल जो हैं जलजों-से सजल
भौंरे से मित्र जो मिल जाएँ दिखा देना यहाँ।
हमको मालूम है लाये हो सुधा ओठों में—
क्या करोगे उसे? प्यासों को पिला देना यहाँ!

आज इन सम्भावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' इक्कीसवीं शताब्दी के लिए प्रासंगिक लेखक के रूप में उभरे थे। हालाँकि उनकी प्रासंगिकता कथा-लेखन की दृष्टि से ही अधिक हो सकती है, परन्तु कहानियाँ और उपन्यासों के समानान्तर उनकी कविताएँ भी पढ़ी जानी चाहिए। ख़ास तौर से उनकी व्यंग्य-कविताओं में जो भाव व्यक्त हुए हैं, वे गोया बीसवीं शताब्दी के आख़िरी दिनों की व्याख्या हों। उनके व्यंग्यों में राजनेताओं के चारित्रिक पतन, समाजसेवियों की अर्थ-लोलुपता, बाज़ार के छल-छद्म, रिश्वतख़ोर अफ़सरों के कच्चे चिट्ठे, शिक्षा-जगत की विसंगतियों और साहित्य-सृजन के खण्डित मूल्य बेबाक ढंग से प्रस्तुत हुए हैं।

4

'उग्र' की कहानियाँ

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी रचनात्मक सम्पूर्णता की तलाश कहानी-लेखन द्वारा शुरू की। वे एक कवि के रूप में नवजागरण के राजनीतिक बोध तक सीमित थे, परन्तु कहानियों की रचना द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की हर धड़कन से जुड़ गए। सृजन-दृष्टि का फैलाव हुआ। शहरों से गाँवों में भी गए। तमाम विसंगतियाँ देखीं। भरे पेट देखे, ख़ाली पेट देखे। किसानों-ज़मींदारों के आचरण परखे। वहिष्कृत दलित-समाज के धैर्य का मूल्यांकन किया। ये थे 'उग्र' के गाँवों के अनुभव।

'उग्र' ने गाँवों से ज़्यादा शहर देखे थे। हिन्दू-मुसलमान के झगड़े, वर्ण-वर्ग और जातिगत भेद-भाव, पण्डे-पुरोहित, ईश्वर के नाम पर चलनेवाले हथकण्डे, वासना की बदशक्ल तस्वीरें, साम्राज्यवादी शासन की क्रूरताएँ, सामन्ती शोषण, राष्ट्रवादियों-क्रान्तिकारियों द्वारा देश की स्वतन्त्रता के लिए किए जानेवाले संघर्ष, नारी-शोषण जैसे हज़ार-हज़ार दृश्य—उनकी आँखों के सामने से गुज़रे थे और इन सबकी नाप-जोख उन्होंने अपनी कहानियों की तुला पर की। कहीं ज़रा भी पासंग नहीं छोड़ा। न कहीं हिचके, न ही डरे। बाहरी यथार्थों के साथ आन्तरिक यथार्थों की खोज की और एक ऐसे कहानीकार के रूप में उभरे कि उनका कवि रूप इसके नीचे दब गया।

'उग्र' की लगभग डेढ़ सौ कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। लगभग पाँच दर्जन कहानियाँ 'आज' (दैनिक) में छपीं, तीन दर्जन से अधिक 'मतवाला' (साप्ताहिक) में। इसके अतिरिक्त 'ख़ुदा की राह पर', 'सन्मार्ग', 'संगम', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'कहानी', 'प्रेमा', 'मर्यादा', 'सुधा', 'वीणा', 'चाँद', 'अष्टावक्र' जैसे साप्ताहिकों-मासिकों में भी उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुईं।

'मतवाला' में सम्पादन का दायित्व सँभालने की अवधि में 'उग्र' के छः कहानी-संकलन प्रकाशित हो चुके थे। इनका पहला संकलन *चिनगारियाँ* शीर्षक से सन् 1925 में छपा। इसमें स्वतन्त्रता की क्रान्तिधर्मी भूमि पर लिखी बारह कहानियाँ थीं। प्रकाशित होते ही यह संकलन साम्राज्यवादी सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया।

'मतवाला' में 'उग्र' की अन्य पुस्तकों के साथ इसका भी विज्ञापन छपता था, परन्तु कोष्ठक में टिप्पणी दी जाती थी–'सरकार द्वारा ज़ब्त–अप्राप्य'। (मतवाला : 20 अक्टू., 1928 पृ. 10)। *चिनगारियाँ* से पहले 'उग्र' का कहानी-संकलन *चाकलेट* छप चुका था। अप्राकृतिक दुराचरण पर प्रहार करनेवाली इसकी सभी आठ कहानियाँ साहित्य-जगत में उग्र-विवाद का तीखा कारण बनी थीं। 'मतवाला' (सम्पादक : महादेव प्रसाद सेठ), 'विशाल भारत' (बनारसीदास चतुर्वेदी), 'चाँद' (रामरख सिंह सहगल), 'सुधा' (दुलारेलाल भार्गव), 'मारवाड़ी समाज' (शिवपूजन सहाय), 'मनोरंजन' (ईश्वरी प्रसाद शर्मा) और 'नया समाज' (मोहन सिंह सेंगर) जैसी तद्‌युगीन पत्रिकाओं में घासलेटी-साहित्य के पक्ष-विपक्ष में अपनी सम्मति व्यक्त करनेवाले प्रायः सभी हिन्दी-लेखक सम्मिलित हुए थे। विवाद तब थमा जब महात्मा गाँधी ने 'उग्र' के सुधारवादी दृष्टिकोण का समर्थन किया। *चाकलेट* के दो संस्करण जल्दी-जल्दी बिक गए। फिर तीसरा संस्करण प्रकाशित किया गया सन् 1953 में, पचीस वर्षों के बाद, टण्डन ब्रदर्स, चालीस, नीमतल्ला घाट स्ट्रीट, कलकत्ता द्वारा।

'मतवाला' के सम्पादक बाबू महादेव प्रसाद सेठ कलकत्ता में 'पत्थरवाले सेठ' के रूप में विख्यात थे। वे अत्यन्त सहनशील अन्दाज़ में मिर्ज़ापुरी पत्थरों के उपकरण बेचते थे। परन्तु इसी के साथ 'उग्र' की कहानियों के पत्थर भी चलाते थे। बाज़ार और साहित्य दोनों क्षेत्रों में ख़ूब हलचलें मचीं। उन्होंने 'उग्र' के तीन कहनी-संकलन और प्रकाशित किये–*बलात्कार* (1927), *निर्लज्जा* (1929) और *दोज़ख़ की आग* (1929)। इन तीनों संकलनों में कुल 26 कहानियाँ थीं। सेठ जी द्वारा प्रकाशित संकलनों के अतिरिक्त 'उग्र' के सात कहानी-संकलन और प्रकाशित हुए–*सोसाइटी ऑफ़ डेविल्स* (1924 ग़ाज़ीपुर), *क्रान्तिकारी कहानियाँ* (1939 वाराणसी), *रेशमी* (1942), *पंजाब की महारानी* (1943), *सनकी अमीर* (1952, लखनऊ), *कला का पुरस्कार* (1954, दिल्ली) *और जब सारा आलम सोता है* (1953) आगरा। इन कहानियों ने व्यावसायिक बाज़ार को तो समृद्ध किया ही, साथ ही नवजागरण की किरणों में भी प्रखरता उत्पन्न की। प्रेमचन्द के बाद सबसे अधिक बिकने और पढ़े जानेवाले कहानीकार बने–पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'उग्र' को 'राजनीतिक आन्दोलन में सम्मिलित नवयुवकों के स्वदेश-प्रेम, त्याग, साहस और जीवनोत्सर्ग का चित्र खड़ा करनेवाली; समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच धर्म, समाज-सुधार, व्यापार-व्यवसाय, सरकारी काम, नई सभ्यता की ओट में होने पाखण्डपूर्ण पापाचार के चटकीले चित्र सामने लानेवाली तथा किसी तथ्य का प्रतीक खड़ा करनेवाली' (*हिन्दी साहित्य का इतिहास*, 1968 पृ. 520-521) कहानियों के समर्थ लेखक के रूप में मूल्यांकित किया था।

'उग्र' की मृत्यु के बाद 'राजकमल' तथा 'आत्माराम एण्ड सन्स' (नई दिल्ली) जैसे प्रकाशकों ने उनके कई कहानी-संकलन प्रकाशित किए। राजकमल पॉकेट बुक

सीरीज़ द्वारा 12 कहानियों का संकलन *'उग्र' की श्रेष्ठ कहानियाँ* (1961) शीर्षक से प्रकाशित किया। आत्माराम एण्ड सन्स ने सन् 1993 में 91 कहानियों के कुल छह संकलन—1. *पोली इमारत*, 2. *चित्र-विचित्र*, 3. *यह कंचन-सी काया*, 4. *काल कोठरी*, 5. *ऐसी होली खेलो लाल* और 6. *मुक्ता*—प्रकाशित किए। *'उग्र' की श्रेष्ठ कहानियाँ* 'राजकमल प्रकाशन' में केवल एक कहानी 'कुण्ड गोलक' और आत्माराम एण्ड सन्स के सभी छह संकलनों में केवल छह कहानियाँ—बाजरा, मूसल ब्रह्म, प्राइवेट इण्टरव्यू, न्यूज़रील, फुलझड़ी और आचार्य लाल बुझक्कड़—ऐसी संकलित की गईं, जो 'उग्र' द्वारा संयोजित संकलनों में नहीं थीं, बल्कि भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं से ली गई थीं।

हालाँकि आत्माराम एण्ड सन्स ने अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा था—"छह भागों में 'उग्र' का सम्पूर्ण कथा-साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है।" परन्तु इन सभी छह संकलनों में लगभग तीस कहानियाँ ऐसी छूट गईं, जो 'उग्र' द्वारा संयोजित संकलनों में सम्मिलित हुई थीं। मसलन—बलात्कार और स्नान का फल (*बलात्कार* से), निर्लज्जा, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, अछूत, परीक्षा और अन्वेषण (*निर्लज्जा* से), *ख़ूँख़ार मौला एकबारा* (*क्रान्तिकारी कहानियाँ* से), विकास, बेईमान चन्द और ईमान चन्द, वाह होली! वाह होली!! भ्रम, असली कुत्ता और रामदाने का लड्डू (*रेशमी* से), झाऊलाल, रंग, अलग, राष्ट्रीय पोशाक (*जब सारा आलम सोता है* से,) नींद हराम हुई (*पंजाब की रानी* से) जानकी की जीवनी और गोपाल (*सनकी अमीर* से) तथा आठवाँ स्वर, रमा बी. ए., पीर, बाँके बीर, राग मेघ और डाभ (*कला का पुरस्कार* से)।

उक्त कहानियों के अतिरिक्त 'उग्र' की लगभग तीन दर्ज़न ज्ञात कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी तथा असंकलित पड़ी हुई हैं। इनमें 'मतवाला' तथा 'आज' में मिलाकर ढाई दर्ज़न कहानियाँ शताब्दी के अन्त तक आम पाठकों के लिए नहीं उपलब्ध हो सकी हैं। 'उग्र' की असंकलित कहानियों में आधे से अधिक ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। ये कहानियाँ लेखक के रचनात्मक व्यक्तित्व का परिचय तो देती ही हैं, साथ ही अपने समय के सत्ता और समाज का यथार्थवादी चित्र भी प्रस्तुत करती हैं। 'प्यारे' कहानी तो ऐसी कहानी थी, जिसके कारण ब्रिटिश सत्ता द्वारा 'मतवाला' का वह अंक वितरण से रोक दिया गया था, जिसमें वह छपी थी। क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में लिखी 'प्यारे' जैसी कोई भी कहानी उग्र-साहित्य में संकलित नहीं थी।

'मतवाला' में 'उग्र' की जो कहानियाँ असंकलित पड़ी हैं, वे हैं 'प्यारे' (4 अक्टू. 1924), 'पर्दे में पापा' (12 मई, 26 मई और 2 जून, 1928, तीन क़िस्तों में), 'दो आँखें' (3 मई, 1924), 'बाप की बेटी' (2 फ़रवरी, 1929), 'कसाई कहाँ है?' (9 फ़रवरी, 1929), 'कवि' (23 फ़रवरी, 1929), 'पण्डुवा' (9 मार्च, 1929), 'उल्लू' (16 मार्च, 1929) और 'मुक्त' (24 अगस्त, 1929)। इन कहानियों के

अलावा 'उग्र' ने 'मतवाला' में छद्मनाम से भी कुछ कहानियाँ लिखीं। उन्होंने 'पतित' छद्मनाम से दो किस्तों में 'पतित' शीर्षक कहानी लिखी। (16 अगस्त और 23 अगस्त, 1924)। 'ग्रामीण' छद्म से 'रधिया नौची' (27 सित., 1924), 'निखट्टू' छद्मनाम से 'जैसे को तैसा' (8 अगस्त, 1925), इसी नाम से 'बड़ा दिन' (23 जन., 1926), 'युवक हृदय' नाम से 'तपस्या' (8 जून., 1930) और 'आँख का अन्धा नाम नयन सुख' नाम से 'नोट के लिए चोट' शीर्षक कहानियाँ लिखीं। यह भी सम्भावना की जा सकती है कि 'मतवाला' में छद्मनाम से 'उग्र' की कुछ ऐसी कहानियाँ प्रकाशित हों, जिनमें कुछ ऐसे संकेत न हों, जिनके माध्यम से कहा जा सके कि वे उन्हीं की कहानियाँ हैं।

'उग्र' की एक दर्ज़न कहानियाँ 'आज' (दैनिक, वाराणसी) में असंकलित पड़ी हैं। 'सिक्ख सरदार' (14 अगस्त, 1923), 'महावीर सिक्ख' (15 अक्तूबर, 1923), 'पागल का ओट' (4 दिसम्बर 1923), 'मधुवन' (31 जनवरी 1 फ़रवरी और 2 फ़रवरी, 1924 तीन किस्तों में), 'सुन्दरी हिंसा' (13 जुलाई, 1924), 'आँखों में आँसू' (फ़रवरी 1925), 'दुनिया' (फ़रवरी 1925), 'लाइन पर' (9 मार्च, 1948), 'दस दानेदार पाँच नादान' (15 अगस्त, 1956), 'पागल है दीवाना है' (22 मार्च, 1957) और 'जादू की छड़ी' (23 अक्तूबर 1957)। इसी प्रकार 'मूर्खों के मीनाबाज़ार में' (सन्मार्ग 1950), 'शहीद भोंदू भट्ट' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान : 4 सित. 1955), 'गवर्नर' (वही : 29 जनवरी 1956), 'पतिव्रता' (कहानी : जनवरी 1955), 'एस. एस. महाराज अकलपुर' (प्रेमा : अप्रैल 1931), 'दही बड़े' (वीणा : अप्रैल 1940), 'तीन कलाकारों की एक भूल' (वही : फ़रवरी और मार्च 1939 दो क़िस्तों में) तथा 'साधु और असाधु' (सुधा : अगस्त 1940) कहानियाँ भी असंकलित रह गई हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 20 के दशक से लेकर 60 के दशक तक कहानी लेखन को सामाजिक दायित्वों से जोड़ने की कोशिश की। उन्होंने परतन्त्र भारत और स्वतन्त्र भारत दोनों के आन्तरिक यथार्थ का परीक्षण किया और सूक्ष्म तथा गहन परीक्षण से जो भी परिणाम मिले, उन्हें अपने कहानी-लेखन में मूर्त किया।

यह कहना सही नहीं हो सकता कि 'उग्र' मूल्यभंजक कहानीकार थे। वे मूल्यवादी थे। आदर्श उन्हें प्रिय थे। परम्परा से भी उन्हें नफ़रत नहीं थी। अपने समय के दूसरे लेखकों की तरह उन्हें भी सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक व्यवस्थाएँ प्रिय थीं। परन्तु मूल्य, आदर्श, परम्परा, व्यवस्थावाद और धर्म तथा कर्म की आड़ में चलनेवाली शोषण की चक्की के विरुद्ध संघर्ष करने से वे कहीं भी नहीं चूके। इसलिए उन्होंने साम्राज्यवादी ब्रिटिश सत्ता के पोषकों, धार्मिक उन्माद फैलाकर साम्प्रदायिक दंगा फैलानेवाले दरिन्दों, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर दलितों और नारियों के उत्पीड़कों, धार्मिक उपभोक्ताओं, वासना के नरपिशाचों, इन्सानियत के दुश्मनों, छद्माचारियों एवं सामन्तवादी शोषकों के ख़िलाफ़ अनवरत

लड़ाइयाँ लड़ीं। इन्हीं लड़ाइयों की साक्षीकृत दस्तावेज़ हैं 'उग्र' की कहानियाँ।

हालाँकि 'उग्र' को तमाम विरोध झेलने पड़े, परन्तु वे झुके नहीं। उन्होंने लिखा, "मेरी कहानियाँ शुगर कोटेड कुनैन नहीं, बल्कि शुद्ध कटु कुनैन या सिनकोना' हैं। अगर सत्य को ज्यों का त्यों कह देने में कोई कला हो सकती है, तो मेरी इन कहानियों में भी कला है।" (*कैफ़ीयत,* पृ. च)

यों तो पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सृजन के धरातल पर सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक विसंगतियों के विरुद्ध लिखे कहानियों और उपन्यासों में एक ही तरह के मोर्चे खोले, परन्तु विदेशी शासन से मुक्ति और विभिन्न धर्मों में एकता तथा सद्भाव की स्थापना के लिए किए जानेवाले वैचारिक संघर्ष का स्वरूप उपन्यासों की अपेक्षा उनकी कहानियों में अधिक उभरा हुआ है।

उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान की पावन भूमि पर हिन्दुओं-मुसलमानों के बीच होनेवाले साम्प्रदायिक दंगों के मूलभूत कारणों की खोज करने और उनके समाधान के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करने में 'उग्र' अपने युग के बेजोड़ कहानीकार थे। वे हिन्दुओं और मुसलमानों में धार्मिक एकता के साथ सामाजिक और पारिवारिक एकता भी स्थापित करना चाहते थे। अपने प्रथम उपन्यास *चन्द हसीनों के ख़ुतूत* द्वारा दोनों क़ौमों में वैवाहिक सम्बन्ध शुरू करने की वकालत इसलिए की कि ये दोनों क़ौमें हिन्दुस्तानी थीं। वे पूरे हिन्दुस्तान में केवल एक ही क़ौमियत के पक्षधर थे। उनका विश्वास था कि इस उद्देश्य की पूर्ति आपस में रोटी-बेटी के सम्बन्धों द्वारा की जा सकती है।

हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक तथा जातीय सौहार्द्र स्थापित करने के सन्दर्भ में 'उग्र' ने दर्जनों कहानियाँ लिखीं। सन् 1924 से लेकर सातवें दशक की शुरुआत तक यह प्रयास जारी रखा। 'पतित' 'हिन्दू', 'मुसलमान', 'दिल्ली की बात', 'ख़ुदाराम', 'दोज़ख़! नरक !!; 'ख़ुदा के सामने' 'ईश्वर द्रोही' और 'मलंग' जैसी दर्ज़नों कहानियाँ उनकी मानवतावादी दृष्टि की परिचायक हैं। इन कहानियों द्वारा वे बीसवीं शताब्दी के हिन्दुस्तान के लिए नये इन्सान की तलाश कर रहे थे। उन्होंने लिखा, "मुसलमान भी आदमी है, हिन्दू भी। मैं आदमीपरस्त हूँ, हिन्दू और मुसलमान परस्त नहीं।" (ईश्वर द्रोही)।

'उग्र' के सम्पूर्ण वाङ्मय की दृष्टि थी इन्सानपरस्ती। इसके लिए उन्होंने अपनी कहानियों को प्रयोगशाला बनाया। इसी प्रयोगशाला में एक कहानी का शीर्षक अन्वेषित किया—'ख़ुदाराम'। 'रामख़ुदा' नहीं 'ख़ुदाराम। हिन्दी साहित्य के लिए यह अकल्पित शीर्षक था। पूरे हिन्दुस्तान का यह पहला 'ख़ुदाराम' था। अभी तक हिन्दी-उर्दू शब्दकोशों में 'ख़ुदा' और 'राम' अलग-अलग 'पद' थे। 'उग्र' ने दोनों को 'एकपदीय' बनाया। यह थी भारतवर्ष की एकीभूत सामासिक संस्कृति की

व्यवहारवादिता। सबसे पहले कबीरदास ने भारत में 'एकल संस्कृति की स्थापना' की गुहार की थी–

"वेद पुरान कुरान कितेबा, नाना भाँति बखानी।
हिन्दू तुरक जैन अरु जोगी एकल काहु न जानी।"

पाँच सौ वर्षों बाद 'उग्र' ने कबीर के 'एकल धर्म' की पहचान की। 'उग्र' को बहुधर्मीय-बहुभाषीय देश, भारत में सामासिक संस्कृति की परिकल्पना नाकाफ़ी प्रतीत हुई, इसलिए उन्होंने कबीर की एकल संस्कृति को महत्त्व दिया यानी कहानी लिखी, 'ख़ुदाराम'। 'ख़ुदा' और 'राम' के बीच कोई समास-चिह्न नहीं। एक ही सतर में यह ख़ुदाराम नया दर्शन था, नया धर्म, नया आचरण और नया हिन्दुस्तान। 'उग्र' का यह 'एकल दर्शन' बीसवीं शताब्दी के लिए ही उपयोगी नहीं था, बल्कि नई सहस्राब्दी की नई दुनिया के लिए भी ज़रूरी बन सकता है।

'ख़ुदाराम' में 'उग्र' ने लिखा था, "धर्म तो कच्चा सूत होता है। ज़रा-सा इधर-उधर होते ही टूट जाता है।" उन्होंने 'कच्चे' को 'पक्का' बनाने के लिए 'ख़ुदाराम' की काया में प्रवेश किया, फिर बोले, "तो धर्म के नाम पर ख़ून की नदी बहेगी! तुम लोग इन्सान क्यों हुए? धर्म के नाम पर लड़नेवाले इन्सान क्यों होते हैं?" ('ख़ुदाराम', पृ. 89)।

अगर ध्यानपूर्वक 'ख़ुदाराम' की मीमांसा की जाए तो अज्ञात नहीं रह जाएगा कि 'उग्र' के 'ख़ुदाराम' हमारी नई सहस्राब्दी की अनिवार्यता हैं। ख़ुदाराम बाल-पीढ़ी को पैसे देते हैं, मुस्कराहटें देते हैं, दवा देते हैं, नीरोग करते हैं; युवावर्ग को नौकरियाँ देते हैं और वृद्ध पीढ़ी को मुक़द्दमे में विजयी बनाते हैं। स्त्रियों को दहलीज़ के बाहर कर्मपथ पर चलाते हैं, साम्प्रदायिक दंगा रोकते हैं और एक स्वर से सभी को गाने के लिए प्रेरित करते हैं–'ग़र सलामत हैं हम, तो ख़ुदाई कहाँ, तू ख़ुदा, मैं ख़ुदा, फिर जुदाई कहाँ!' वे रोग-शोक और अभाव से मुक्त समाज बनाते हैं, आपस के रक्तपात को रोकते हैं तथा एक नया जुलूस रचते हैं। 'उग्र' ने लिखा, "इस जुलूस के नेता थे 'ख़ुदाराम', उनके पीछे हिन्दू-मुसलमान के बच्चे, बच्चों के पीछे दोनों जाति की माताएँ और सबके पीछे हिन्दू-मुसलमान पुरुष-जुलूस के सशस्त्र रक्षक की तरह चल रहे थे।" ('ख़ुदाराम', पृ. 90) हालाँकि यह जुलूस था बीसवीं शताब्दी का, परन्तु इक्कीसवीं के लिए भी उतना ही लाज़िमी।

'उग्र' ने समकालीन भारतीय समाज से आग्रह किया कि वह समझने की कोशिश करे कि "जो जामा मस्जिद में है, वही विश्वनाथ मन्दिर में। वही ख़ुदा, वही गॉड, वही ईश्वर।...मस्जिद, मन्दिर, गिरजाघर आदि मनुष्य की कल्पना हैं और मनुष्य ईश्वर की कल्पना है। मनुष्य की कल्पना के लिए ईश्वर की कल्पना का नाश करना इतना बड़ा पाप है, जिसका कोई पर्याप्त दण्ड नहीं है।" (दोज़ख़! नरक!!)।

'उग्र' भारतवर्ष में मज़हबी एकता के लिए दोनों सम्प्रदायों की औरतों को

आगे आकर अपनी करुणा और ममतामयी भूमिका निभाने को ज़्यादा कारगर मानते थे। ख़ुदाराम का कहना था– "मैं हिन्दू-मुसलमान दोनों घरों की औरतों और बच्चों की पलटन लेकर दोनों जातियों के पुरुषों पर आक्रमण करूँगा, उन्हें ख़ुदा या धर्म के नाम पर लड़ने से रोकूँगा।" (ख़ुदाराम)

'उग्र' ने देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, विदेशी परतन्त्रता से मुक्ति, क्रान्तिकारी आन्दोलन, गाँधीवाद और राजनीतिक चेतना के जागरण से सन्दर्भित कई दर्ज़न कहानियाँ लिखीं। 'टॉम, डिक और हैरी एण्ड कम्पनी' कहानी एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी द्वारा भारत को आर्थिक उपनिवेश बनाने के षड्यन्त्र के विरोध के लिए लिखी गई। टाम अंग्रेज़, डिक फ्रेंच और हैरी अमेरिकन, इन तीनों ने "गाँवों का आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक सर्वनाश करके भारतीयों को मानसिक और शारीरिक गुलाम बनाने की योजना रची थी।" 'उग्र' ने चिन्ता जताई, "प्रबुद्ध इण्डियन भी उनके ज़ुल्मों को भूल गए। उन्होंने इण्डिया का दोहन-शोषण करने के तरीक़े ढूँढ़ लिए। उन्होंने विश्वास दिला दिया कि इस देश में भारतीय व्यवसायियों की अपेक्षा वे सस्ता व्यापार करेंगे।' इस बहुराष्ट्रीय कम्पनी द्वारा भारत के बाज़ारों पर कब्ज़ा कर लेने की साज़िश के ख़िलाफ़ 'उग्र' की जागरूकता, काल की सीमा लाँघती हुई इक्कीसवीं शताब्दी में आ खड़ी होती है।

'उग्र' द्वारा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में लिखी कहानियाँ–देशभक्त, स्वदेश के लिए, नादिरशाही, माँ कैसे मरी, निहलिस्ट, वीर कन्या, नेता का स्थान, जैतू में, वह दिन, प्यारे, मेरी माँ, उसकी माँ, नरसिंह राज और जल्लाद आदि–आम पाठकों में जितना सराही गई थीं, उतना ही सरकारी कोप का भाजन भी बनी थीं। उनकी 'प्यारे' शीर्षक कहानी ('मतवाला'; 4 अक्टूबर 1924) ब्रिटिश सरकार के विरोध में इतनी अधिक उत्तेजक हो गई थी कि 'मतवाला' के उस अंक के वितरण पर पाबन्दी लगा दी गई थी।

कहानी-लेखन में 'उग्र' हमेशा आग्नेय रहे। सुधारवादी शैली तथा रोमांटिक भाषा की पक्षधरता उन्होंने नहीं की। तटस्थता उन्हें नहीं प्रिय थी। ऐसा नहीं था कि उन्होंने शोषण का विरोध केवल लेखन के स्तर पर ही किया, बल्कि विरोध करने के आन्दोलनों में सक्रिय हिस्सेदारी की। "किसी भी महान रचनाकार के सारे गुण 'उग्र' की कहानियों में सहज रूप से प्राप्य हैं।" (राजकमल चौधरी, भूमिका–*पोली इमारत,* 1913)

5

'उग्र' के उपन्यास

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास उनके लेखकीय व्यक्तित्व की सम्पूर्णता के प्रतिनिधि हैं। *कढ़ी में कोयला* के 'ठाट' शीर्षक में अपने उपन्यासों की मूल संवेदना का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा था, " *कढ़ी में कोयला* में एक या एकाधिक भारतीय समाज के बिगड़ते स्वास्थ्य पर नीरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है। वैसी ही कोशिशें मैं एक ज़माने से करता आ रहा हूँ। मेरे सभी उपन्यास, उपन्यास कहीं कम और सामाजिक रोगों के एक्स-रे फ़ोटो कहीं ज़्यादा हैं। *चन्द हसीनों के ख़तूत* हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर है, *बुधुआ की बेटी* (मनुष्यानन्द) में अछूत समस्या है, *दिल्ली का दलाल* में भगाई हुई युवतियों की समस्या है, 'शराबी' उपन्यास का विषय उसके नाम से ही विदित है, *घण्टा* और *सरकार तुम्हारी आँखों में* की मैं नहीं कह सकता, "बाक़ी के मेरे सभी उपन्यास समस्यावाले ही हैं।" अपने उपन्यासों के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था, "उपन्यास का उद्देश्य—समाज या समाज— विशेष की बुराइयों का विशेष वर्णन कर उचित उपचार के लिए एक्स-रे फ़ोटो सामने रखना।" (राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 15 अगस्त, 1955 पृ. 6 और 8)

'उग्र' ने कुल तेरह उपन्यास लिखे थे। इनमें दस उपन्यास उनके जीवन-काल में और तीन मृत्यूपरान्त प्रकाशित हुए। मतवाला-मण्डल में सम्मिलित होने के पहले उन्होंने कोई भी उपन्यास नहीं लिखा था। सम्मिलित होते ही पत्रात्मक शैली में *चन्द हसीनों के ख़तूत* लिखा। प्रकाशित किया महादेव प्रसाद सेठ ने, मूल्य रखा केवल बारहआने। कथ्य और शैली में नए प्रयोग के कारण उपन्यास हाथों-हाथ बिक गया। कलकत्ता के पाठकों के रुख से उन्हें उपन्यास-लेखन की भारी प्रेरणा मिली। परिणाम यह हुआ कि जब उन्होंने अपना दूसरा उपन्यास *दिल्ली का दलाल* लिखा तो उसकी 1100 प्रतियाँ केवल डेढ़ महीने में ही बिक गई। (*निराला का पत्र, शिवपूजन सहाय को* 1 अक्टूबर 1927, *निराला की साहित्य साधना,* पृ. 230)। इस तरह 'उग्र', 'उपन्यास' और 'बाज़ार' का एक ऐसा त्रिकोण बना, जो तिलिस्म, अय्यारी और जासूसी उपन्यासों के बाद का सबसे बड़ा आकार था। *दिल्ली के दलाल* के बाद

बुधुआ की बेटी छपा। नारी-मुक्ति और दलित-चेतना के आधार पर लिखे गए इस उपन्यास ने पाठकीय संसार में हंगामा खड़ा कर दिया। *सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला* जैसे उपन्यासों की अपेक्षा अधिक पाठक मिले 'उग्र' के उपन्यासों को। पाठकों की प्रशंसात्मक टिप्पणियों से 'मतवाला' के पृष्ठ भरने लगे। 'द लीडर', सण्डे, अक्टूबर, 14-1928 का एक पूरा पेज़ 'उग्र' के उपन्यासों की प्रशंसा में छपा। 'मतवाला' ने अंग्रेज़ी का हिन्दी अनुवाद किया और समानान्तर रूप से दोनों को (अंग्रेज़ी और हिन्दी) 28 अक्टूबर, 1928 वाले अंक में प्रकाशित कर दिया (पृ. 10)। उनमें से *दिल्ली के दलाल* पर दी गई टिप्पणी थी, "भाषा और वर्णन शैली, अत्यन्त ज़ोरदार और मनोरंजक (Vigorous and Charming) है। जो पुस्तक का प्रधान उद्देश्य उन लोगों के हथकण्डों का भण्डाफोड़ करना है, जो लड़कियों और जवान औरतों को ख़राब उद्देश्य से भगा ले जाते हैं। इसे कुछ लोग अश्लील कह सकते हैं। उसे (लेखक को) प्रकृति की नाशवान लज्जा का चित्रण करना पड़ा है, परन्तु यह चित्रण कला के सजीव रंगों द्वारा हुआ है। (He had to paint the martal show of nature with the living hues of art.) इसमें समाज की बुराइयों का नग्न चित्र है। परन्तु चित्रण कहीं भी ऐसा नहीं हुआ है, जिससे पाठकों की कुत्सित वृत्तियों को उत्तेजना प्राप्त हो।" (मतवाला : 20 अक्टूबर 1928 पृ. 10)। 'लीडर' ने *चन्द हसीनों के ख़तूत* पर भी लम्बी पुस्तक-समीक्षा प्रस्तुत की थी। इसका अन्तिम वाक्य था—"It would hardly be an exaggeration to say that'there is not a single dull page in the whole book." (वही)

'उग्र' के उपन्यास पाठकों द्वारा इतने अधिक प्रशंसित हुए कि 'मतवाला' के मुख्य पृष्ठ पर—जिस पर निराला की कविताएँ प्रकाशित होती थीं—उनके विज्ञापन छपने लगे। मसलन *बुधुआ की बेटी* के विज्ञापन की एक-दो पंक्तियाँ, 'अद्भुत रस का, सामाजिक उथल-पुथल का, अछूतों के उद्धार की ओर ध्यान दिलानेवाला, परम मौलिक उपन्यास...धड़ाधड़ बिक रहा है और उपन्यास-प्रेमियों की अँगुलियों पर नाच रहा है।...(मतवाला : 13 अक्टूबर, 1928 मुख पृ.)। 'उग्र' के ये तीनों उपन्यास—*चन्द हसीनों के ख़तूत* (1924), *दिल्ली का दलाल* 1927 और *बुधुआ की बेटी* (1928) विवाद और विश्वास दोनों के कारण बने थे, परन्तु विवाद परम्परावादी हिन्दी-लेखकों तक सीमित था, जबकि आम पाठकों में दूर-दूर तक विश्वास व्याप्त था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी *दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी,* और *सरकार तुम्हारी आँखों में* को 'समाज के पाखण्डपूर्ण कुत्सित पक्षों का उद्घाटन और चित्रण करनेवाले' उपन्यास कहा था। (*हिन्दी साहित्य का इतिहास,* पृ. 518)।

'मतवाला-मण्डल' में सम्पादन का दायित्व सँभालने की अवधि में 'उग्र' का चौथा उपन्यास *शराबी* 'मतवाला' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होने लगा। इसका अधिकांश भाग 20 अप्रैल, 1929 से लेकर 27 जुलाई 1929 तक प्रकाशित हो गया

था, परन्तु इसका प्रथम संस्करण छपा सन् 1930 की शुरुआत में बनारस से। मतवाला-काल के सभी चार उपन्यासों ने (*चन्द हसीनों के ख़ुतूत, दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी* और *शराबी*) पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को हिन्दी पाठकों में प्रेमचन्द से भी अधिक शोहरत दिलाई। जी.पी. श्रीवास्तव, जो स्वयं हास्य और व्यंग्य के चर्चित कथाकार थे, 'उग्र' के उपन्यासों के बेहद प्रशंसक थे। उन्होंने 'उग्र' के उपन्यासों की लम्बी समीक्षा की थी जिसकी अन्तिम पंक्ति थी, "मैं किसी भी पुस्तक को दस-बीस सफ़े से ज़्यादा एक बैठक में नहीं पढ़ सकता, परन्तु पुस्तक हाथ में लेते ही अपने पाखण्डी समाज के भीतरी रहस्यों की गुप्त लीलाएँ दिखानेवाले 'उग्र' जी की निडर लेखनी पर मैं मोहित हो गया।" (मतवाला : 19 जनवरी, 1929 मुखपृष्ठ)

हालाँकि 'उग्र' ने तेरह-चौदह उपन्यास लिखे, परन्तु मतवाला-काल के चार उपन्यासों से उनको जो ख्याति मिली, वह बाद के उपन्यास नहीं दे सके। वे जब तीसरी बार (1949) 'मतवाला' में आए, तब एक राजनीतिक उपन्यास *गंगाजल* लिखा, जो अब उपलब्ध नहीं है। इसका पता 'मतवाला' (26 फरवरी 1949 पृ. 9) में छपे विज्ञापन द्वारा लगता है। विज्ञापन की भाषा थी—'उग्र'-लिखित पुस्तकें—एक *गंगाजल* (राजनीतिक उपन्यास, मूल्य पाँच रुपये) दो—*नई पीढ़ी* (राजनीतिक नाटक मूल्य दो रुपये)। नोट—प्रेस में चली गई, प्रतियाँ कम छपेंगी, एडवांस और आर्डर भेजिए। बीसवीं सदी पुस्तकालय, गऊघाट, मिर्ज़ापुर सिटी। मतवाला के इस विज्ञापन से स्पष्ट है कि 'उग्र' का *गंगाजल* उपन्यास सन् 1950 में प्रकाशित हो गया था। स्पष्ट है कि 'उग्र' ने कुल तेरह उपन्यास लिखे। इनमें से दो उपन्यास *सब्ज़ बाग़* और *गंगामाता* उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए।

यद्यपि नागरी प्रचारिणी-पुस्तकालय, काशी की पुस्तक-सूची में 'उग्र' को ऐतिहासिक उपन्यास *रंग-महल-रहस्य* का भी लेखक दर्ज किया गया है, परन्तु इसके लेखक 'उग्र' रहे हों, इसका कहीं कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। *रंग-महल-रहस्य* का प्रथम विज्ञापन 'मतवाला' (19 दिसम्बर 1925 पृ. 405) में हुआ था। परन्तु विज्ञापन में लेखक का नाम नहीं दिया गया था। विज्ञापन के नीचे ('मतवाला-मण्डल', 36 शंकर घोष लेन, कलकत्ता) छपा, जिससे ज्ञात होता है कि उक्त उपन्यास 'मतवाला-मण्डल' के किसी सदस्य द्वारा ही लिखा गया था, परन्तु 'उग्र' द्वारा नहीं, क्योंकि जब तीन वर्षों बाद मतवाला में 'उग्र'-ग्रन्थावली का विज्ञापन छपा (20 अक्तूबर 1928 पृ. 10) तब उसमें *रंग-महल-रहस्य* का कोई उल्लेख नहीं था। बड़ी सम्भावना है कि यह उपन्यास शिवपूजन सहाय द्वारा लिखा गया हो, क्योंकि *रंग-महल-रहस्य* के विज्ञापन के एक सप्ताह पहले 'महिला-महल' (दस अनूठी आख्यायिकाएँ) का विज्ञापन प्रकाशित हुआ था। (12 दिसम्बर 1925) 'महिला-महल' के लेखक शिवपूजन सहाय थे।

अगर *रंग-महल-रहस्य* को छोड़कर 'उग्र'—रचित उपन्यासों की गणना की जाए तो कुल तेरह उपन्यास उनकी रचनात्मक प्रतिभा के साक्षी हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से उनमें व्यापक वैविध्य है। इन सभी उपन्यासों में नग्न यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। केवल *घण्टा* उपन्यास ऐसा है, जिसमें यथार्थ के साथ आदर्शों की भी कल्पना है। *घण्टा* 'उग्र' का प्रयोगवादी उपन्यास है। इसमें जादुई यथार्थ के प्रति अधिक झुकाव दिखलाई पड़ता है। तिलिस्मी चमत्कारों का भी प्रदर्शन है। प्रथम विश्वयुद्ध की ऐतिहासिक परिस्थितियों का वर्णन भी चमत्कारपूर्ण है। वे *घण्टा* (अष्टधातु) को केन्द्रीय पात्र के रूप में प्रस्तुत कर भारतीय नवचेतना का नया प्रतीक तलाश करते प्रतीत होते हैं।

'उग्र' के प्रायः सभी उपन्यास शहरी जीवन पर ही आधारित हैं। उन्होंने गाँवों, किसानों, कृषि-जीवन तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विभिन्न कारकों को नज़र-अन्दाज़ कर दिया है। हालाँकि उनका बचपन गाँव में ही बीता, परन्तु उनके उपन्यासों में गाँव अनुपस्थित है। ख़ास तौर से यह कमी तब खटकती है, जब प्रेमचन्द, जैसे कथाकार अपने उपन्यासों तथा कहानियों की रचना की मुख्य भूमि गाँवों को ही बना रहे थे। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में हिस्सा लेकर 'उग्र' ने वाराणसी के आसपास के गाँवों का कम दौरा नहीं किया था, लेकिन लगता है कि वे उन गाँवों के जीवन का सूक्ष्म अनुवीक्षण नहीं कर पाए थे। एक दृष्टि से यह भी उनकी रचनात्मक ईमानदारी थी। उन्होंने अपने उपन्यासों में उन्हीं शहरी ज़िन्दगियों का वर्णन किया, जिन्हें वे एक रचनाकार के रूप में ग़ौर से देखते रहे थे। उन्होंने शहरी जीवन की कुरूपता पर ज़्यादा चोट की क्योंकि इसमें उनकी निगाह काफ़ी नीचे तक धँसी थी।

अगर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यासों के प्रमुखतम कथ्यों के अनुरूप वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाए तो कहना पड़ेगा कि उनमें 1. यौन-शोषण के तमाम हथकण्डों का पर्दाफ़ाश। 2. दलितों की बहुमुखी उत्थान-चेतना, 3. नारी-जीवन की युगधर्मी मीमांसा 4. सम्प्रदायवाद का विरोध और हिन्दू-मुस्लिम एकता, 5. सामन्तवादी व्यवस्था के विरोध में जन-चेतना का जागरण, 6. कुरीतियों-अन्धविश्वासों, तन्त्र-मन्त्र, ओझा-सोखा, भूत-प्रेत में तर्कहीन विश्वासों का विरोध और इन सबसे ऊपर, 7. देश-प्रेम का जागरण-मन्त्र तथा गुलामी की कारा से भारत की मुक्ति-कामना, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आनुषंगिक रूप में राष्ट्रीय शिक्षा, युवा-क्रान्ति, बेकारी-बेरोज़गारी और भुखमरी से छुटकारा दिलाने के उपाय, जाति-वर्णव्यवस्था, छूत-अछूत की कुत्सा को धिक्कारने की प्रवृत्ति, फ़िल्मी जीवन की नग्न झाँकियाँ, साहित्य-संगीत-नृत्य-कला में प्रविष्ट विनाशक तत्त्वों पर आक्रमण, भारतीय स्वतन्त्रता के बाद पार्टीवाज, वोट-प्रिय, नेताओं की छद्‌म संस्कृति, वैयक्तिक लाभ के लिए आज़ादी का दुरुपयोग, मीडिया के लिए रचनात्मक दृष्टि के सुझाव, कालाधन, काला बाज़ार और मुनाफ़ाखोरी के लिए करापवंचन की ख़िलाफ़त तथा छद्म—कर्मकाण्ड, मन्दिर-मस्जिद गिरजा—गुरुद्वारा, बौद्धमठ की आड़ में होनेवाले

अनाचारों का विरोध और उदात्त नैतिकता की खोज जैसे कथ्य अनुस्यूत हुए हैं। ये सभी प्रसंग सभी उपन्यासों में मिल जाते हैं। मसलन *चन्द हसीनों के खुतूत* हिन्दू-मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में लिखा उपन्यास है, परन्तु अवान्तर रूप से कमोबेश दूसरे प्रसंग भी मूर्त हुए हैं। इसी प्रकार *बुधुआ की बेटी* (मनुष्यानन्द) दलित-जागरण, *दिल्ली का दलाल* रूप के सौदागरों द्वारा भगाई गई युवतियों के यौन-शोषण, 'शराबी', शराव द्वारा पैदा हुए अनेक सामाजिक विद्रूपताओं पर चोट करने और वेश्या-वृत्ति के उन्मूलन, *सरकार तुम्हारी आँखों में* सामन्ती वृत्तियों के नग्न उद्‌घाटन के प्रसंगों में लिखे गए हैं। परन्तु इन केन्द्रीय प्रसंगों के साथ दूसरे प्रसंग भी उभरे हुए हैं। शहरी जीवन का सारा फैलाव हर उपन्यास में है।

भारतीय स्वतन्त्रता के वाद प्रकाशित 'उग्र' के उपन्यासों में देश और काल की जाँच करने का ढंग इतना अधिक व्यंग्यात्मक हो गया कि लेखन की एक नई धारा प्रवर्तित हुई। हालाँकि 'उग्र' के स्वतन्त्रता-पूर्व उपन्यास भी समस्या-प्रधान थे परन्तु स्वतन्त्रता के वाद छपे उपन्यासों की समस्याएँ अधिक कड़वी हो गईं। इसका मूल कारण था विदेशी शासन का देशी शासन में परिवर्तित होना, परन्तु सत्तात्मक प्रवृत्तियों का ज्यों का त्यों बरक़रार रहना।

देश की आज़ादी के आठ वर्षों बाद 'उग्र' का उपन्यास छपा *कढ़ी में कोयला*—स्वतन्त्रता का प्रतीक-कढ़ी और भ्रष्टाचार-चोरबाज़ारी, कदाचार का प्रतीक-कोयला। 'उग्र' ने अनुभव किया कि परतन्त्रता-काल की सवल राष्ट्रीय चेतना, स्वतन्त्रता-काल में क्षीण पड़ गई थी। नफा-मुनाफा, शोपण की क्रूर प्रवृत्ति, वासना का प्रबल वेग और व्यक्ति-हित में राष्ट्रीय भावना की अवहेलना जैसी कुप्रवृत्तियाँ नए-नए रूप धारण करने लगी थीं। यानी कोयला कढ़ी का स्वाद बिगाड़ने लगा था। इसी वर्ष *जीजी जी* छपा, जिसमें अनमेल विवाह के दुष्परिणामों की व्यापक फ़ोटोग्राफ़ी की गई। *फागुन के दिन चार* और *जुहू* फ़िल्मी जीवन के माध्यम से खण्डित होती कला तथा संस्कृति के मूल्यों पर प्रकाश डालते हैं। *सब्ज़बाग़* में लेखक-प्रकाशक के रिश्तों के वीच पड़नेवाली खाई की चर्चा हुई। साथ ही *बुधुआ के बेटी* की तरह दलित जीवन की वर्तमान अवस्था का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया गया। *गंगामाता* में साम्प्रदायिक सौहार्द्र और नारी-जागरण की समस्याएँ उभारी गईं। इसी तरह परिस्थितियों के वदलाव के तहत बनी नई समस्याओं की प्रस्तुति भी कलात्मक ढंग से की गई। यह थी 'उग्र' की विशेषता।

बुधआ की बेटी (मनुष्यानन्द)

पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' का उपन्यास *बुधुआ की बेटी* (1926-1927), जो अड़तीस वर्षों बाद *मनुष्यानन्द* (1964) शीर्षक से प्रकाशित हुआ, सामाजिक विभेद

के तमाम दायरों से ऊपर इन्सानियत की वैचारिक तलाश था। इसमें दलित-जीवन के यथार्थ के साथ ही दलित-चेतना के उदय और इस नवजाग्रत चेतना के कारण दलितोत्थान के परिदृश्य सोपान-प्रति-सोपान उभरते चले गए हैं। 'बुधुआ' दलित-जीवन के यथार्थ का प्रतिनिधि, रधिया दलित-चेतना की प्रतिनिधि और मनुष्यानन्द दलितोत्थान की सफलता के प्रतिनिधि हैं। ये तीनों व्यक्ति-पात्र नहीं, बल्कि वर्ग-पात्र हैं। *मनुष्यानन्द* में महात्मा गाँधी और बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर दोनों का समाहार है। जगह-जगह लेनिन भी झलक मारते हैं। मनुष्यानन्द, मनुष्य के उस आनन्द के रूप में चित्रित किए गए हैं, जिसकी उपलब्धि अभी शेष है।

"भला भंगी की औरत का इलाज कौन डॉक्टर कर सकता है?" (पृ. 15) जैसी छूत-अछूत प्रवृत्ति के कारण बुधुआ की औरत मर गई। रधिया केवल दो वर्ष की थी। मनुष्यानन्द हिन्दू-समाज में गए, उत्तर डॉक्टरों ही जैसा, "भला भंगी की बच्ची को कौन पालेगा?" (पृ. 163) एक भी हिन्दू शरण देने को तैयार नहीं हुआ। (पृ. 123)। अन्त में रधिया को सिगरा के गिरजाघर के फ़ादर जान्सन ने पाला-पोसा, पढ़ाया और युगीन चेतना से अवगत कराया। 'पहली पंचायत' (पृ. 211 से 222) शीर्षक में दलितों के यथार्थवादी जीवन का लेखा-जोखा। अपढ़, ग़रीब और गन्दगी में जीने के लिए विवश दलित-समाज में चोरी, जुआ और नशा की प्रवृत्तियाँ थीं। दलित-चेतना के पहले स्तर पर बुधुआ और मनुष्यानन्द द्वारा इन कुरीतियों से मुक्ति पाने का अभियान चलाया गया। 'दूसरी पंचायत' में (पृ. 231-240) दलितों में अपने वर्ग के लिए संघर्ष करने का भाव जगाया गया। मनुष्यानन्द की अपील थी, 'तुम लोग अपने वर्तमान जीवन से छुटकारा पाओ। (पृ. 248) 'तुम्हें दलबद्ध होना चाहिए' (पृ. 240)। उन्होंने बुधुआ से कहा, 'मैं तुम्हें नीच या अछूत नहीं मानता'। (57) उन्होंने दलिताश्रम बनाया, दलित शिक्षा की व्यवस्था की। रोज़गार के अवसर सृजित किए, आत्म-निर्भर बनाया और ऊँच समझनेवाले समाज से संघर्ष करने तथा सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रशिक्षित किया।

बुधुआ की बेटी में 80-90 के दशक में दलितों की जाग्रत चेतना की तरह प्रखरता भी है और तीखापन भी है। हिन्दी साहित्य में दलित जीवन के उत्थान से सम्बन्धित यह पहला उपन्यास था। विश्वनाथ जी के मन्दिर में दलितों के प्रवेश के साथ इसका समाधान किया गया है।

बुधुआ की बेटी में दलित-चेतना के समानान्तर नारी-मुक्ति की भी मीमांसा प्रस्तुत की गई थी। सिगरा का चर्च, मनुष्यानन्द, फ़ादर जान्सन, इंग्लैण्ड के रेवरैंड राइट और मेमसाहिबा और इन्हीं के संरक्षण में एक संघर्षशील नारी के रूप में विकसित रधिया ने स्त्री-समाज को जाग्रत करने का संकल्प किया। मेम और रधिया, दोनों के विचार थे, "स्त्री-जाति पर शुरू से सबल होने के कारण पुरुष जुल्म करते हैं। पुरुषों का गढ़ा हुआ समाज भी उन्हीं के पक्ष में अधिक है। स्त्रियों को स्वार्थी

पुरुष-जाति के विरुद्ध युद्ध घोषणा करनी होगी।" (पृ. 99) स्त्रियों के प्रति पुरुषों की धारणा का उल्लेख करते हुए 'उग्र' ने लिखा था, "औरत को सब सुख दो, मगर आज़ादी कभी न दो।" (पृ. 99)

बुधुआ की बेटी में यौन-उपभोक्ताओं पर भी तीखा व्यंग्य किया गया है। घनश्याम, गुलाबचन्द और इन प्रकार के देहवादियों के मन में कितनी अधिक लोलुपता थी इसका प्रमाण गुलाबचन्द के एक कथन में पाया जा सकता है, "यार, आफ़त है, ग़ज़ब है, सितम है, क़हर है, क़यामत है।" (पृ. 6)। पूरे उपन्यास में यौन-शोषकों के दृश्य-परिदृश्य उभरे हुए हैं।

'उग्र' ने *बुधुआ की बेटी* में दो पीढ़ियों के मूल्यगत द्वन्द्व का भी चित्रण किया है। पिता-पीढ़ी और पुत्र-पीढ़ी की जीवनगत दृष्टिकोण में आए भारी अन्तर को घनश्याम और उसके पिता के बीच चलनेवाले वाक्-युद्ध द्वारा उभारा गया है। घनश्याम कहता है, "मैं पातकी ही सही आप पूर्णात्मा बने रहिए।" (पृ. 16) 'उग्र' ने 'पिता-पुत्र' के एक अध्याय द्वारा पुराने जीवन-मूल्यों और नए जीवन-मूल्यों के बीच पड़े वैचारिक अन्तर को मनोवैज्ञानिक ढंग से उभारा है। (पृ. 17 से 22)। घनश्याम और गुलाबचन्द का सोचना था, "बड़े-बूढ़ों के हज़ार रोगों में एक रोग अपने से छोटों के आगे लेक्चर झाड़ना भी है।" (पृ. 7)

बुधुआ की बेटी में लोभ अथवा भय के माध्यम से किए जानेवाले धर्मान्तरण का भी विरोध किया गया। हालाँकि 'उग्र' ने चर्च और ईसाई मिशनरियों द्वारा की जानेवाली सेवा-वृत्ति की काफ़ी तारीफ़ की, परन्तु उनके द्वारा 'हिन्दू अछूतों को ईसाई अछूत बनाने' की प्रवृत्ति की निन्दा भी की। मनुष्यानन्द ने पादरी जानसन से कहा, "इसे शुद्ध सेवा मैं तब मानता, जब आप उन्हें अपने समाज में मिलाते, पढ़ाते-लिखाते, ज्ञानी बनाते और तब उनसे पूछते कि तुम हिन्दू-धर्म अच्छा समझते हो या ईसाई या कोई भी नहीं?" (पृ. 126) 'उग्र' ने सभी धर्मों को एक समान मानने का वातावरण बनाया था। वे नहीं चाहते थे कि भारत जैसे महान् देश में धर्म-धर्म के बीच संघर्ष चले। उनके अनुसार हर व्यक्ति को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह अपनी आस्था और निष्ठा के तहत जिस भी धर्म को चाहे स्वीकार करे।

'उग्र' ने अपने इस उपन्यास में भूत, प्रेत, जिन, तन्त्र, मन्त्र, फ़क़ीरी छद्म तथा पण्डा-पुरोहितवाद का भी विरोध किया। 'लियाकत हुसेन' और 'सुकली' के वर्णनों द्वारा इस प्रकार की कुरीतियों की ख़िलाफ़त की।

अगर ग़ौर से देखा जाए तो *बुधुआ की बेटी* (1926-27) में 'उग्र' ने जिन-जिन समस्याओं से जूझने और उन्हें हल करने की कोशिशें की थीं, वे सभी समस्याएँ बीसवीं शताब्दी के आख़िरी दशकों में फिर से उठाई गई हैं। दलित-विमर्श, नारी-मीमांसा और धर्मान्तरण की समस्या पर विचार करना आज और अधिक

प्रासंगिक हो गया है। दो काल-खण्डों की तुलना के लिए *बुधुआ की बेटी* उपन्यास को मानक के रूप में ग्रहीत किया जा सकता है।

'उग्र' के अन्य उपन्यासों की तरह *बुधुआ की बेटी* भी कथा-रस से ओत-प्रोत उपन्यास है। कहीं व्यंग्य और कहीं गहन मीमांसा के कारण उपन्यास की शैली अधिक आकर्षक हो गई है। भाषा आम फ़हम और पाठकीय रुचि के अनुकूल है।

एक बार फिर कहा जा सकता है कि 'उग्र' ने अपने समय में प्रचलित सभी विधाओं में रचनाएँ कीं, परन्तु उनकी प्रसिद्धि कथाकार के रूप में ही हुई। अगर सभी विधाओं की तुलना करने के बाद उनके रचना-धर्म का मूल्य निर्धारित किया जाए तो कहना पड़ेगा कि वे अपने कथात्मक संवेदनाओं को ही अन्य विधाओं में दोहराते रहे थे। यह अवश्य है कि हर विधा में विधात्मक स्वाद-सृजन में रिक्त नहीं पड़ते थे।

6

'उग्र' के नाटक

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने सात नाटक और लगभग डेढ़ दर्जन एकांकी (ख़ासतौर से प्रहसन) लिखे। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत नाट्य-लेखन द्वारा की थी। *महात्मा ईसा* (नाटक) उनकी प्रथम ऐसी कृति थी, जिसकी रचना-दृष्टि की प्रशंसा प्रेमचन्द से लेकर तमाम दूसरे साहित्यकारों ने की थी। प्रेमचन्द ने लिखा, "पहला 'एक्ट' समाप्त होते-होते तो मैं उसका भक्त हो गया। भाव, भाषा, चरित्र-चित्रण, कथानक-सभी ने मुझे मुग्ध कर दिया। ...*महात्मा ईसा* महाशय डी.एल. राय के किसी नाटक से टक्कर ले सकता है। ऐसे मौलिक और गहन विषय पर नाटक लिखकर 'उग्र' जी ने हिन्दी का मस्तक ऊँचा कर दिया है।" (श्रद्धेय प्रेमचन्द की नज़र—*महात्मा ईसा* का प्रथम पन्ना, 1922)। 'मतवाला' में इसका परिचय छपा, आकर्षक व्यंग्य शैली में। (1 अगस्त, 1925 पृ. 2)। सेठजी ने लिखा, "'मतवाला' पाठकों के परिचित, यू.पी. सरकार के वर्तमान मेहमान श्रीयुत बेचन शर्मा 'उग्र' इसके लेखक हैं।" (वही) लम्बा परिचय देते हुए लिखा गया था—

> "यह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ मौलिक नाटक है। साधु चरित म. ईसा को चित्रित करने में लेखक ने आशातीत सफलता प्राप्त की है।" (वही)।

'उग्र' की दूसरी नाट्यकृति *चुम्बन* (1937) ने उन्हें ज़बरदस्त उछाल दी। विज्ञापन और पुस्तक समीक्षा में यह *महात्मा ईसा* से दो क़दम आगे बढ़ गया। चाकलेट (कहानी), *दिल्ली का दलाल* (उपन्यास) और *चुम्बन* (नाटक) अपने समय की पुस्तक-समीक्षाओं के त्रिकोण बन गए। *चुम्बन* के लिए लिखा गया, *चुम्बन* नाटक में 'उग्र' जी की अनोखी लेखनी ने पुरुष जाति के स्त्री जाति पर किए हुए अत्याचारों का ऐसा सुन्दर चित्रण किया है, इसका प्लाट ऐसा मनोरम और अद्भुत है, इसमें गान इतने सुन्दर हैं कि, आप पढ़कर फड़क उठेंगे। इसे क्रान्तिकारिणी रचना कहा जा सकता है। (बीसवीं सदी पुस्तकालय, मिर्ज़ापुर सिटी का विज्ञापन, पृ. 8)

सन् 1937 में 'उग्र' का नाटक *डिक्टेटर* प्रकाशित हुआ। भूमिका में 'उग्र' ने लिखा, *डिक्टेटर* नाटक से अधिक राजनीतिक वाद-विवादों का मनोरंजक संग्रह मात्र है। 'नाटक के अन्त में उन्होंने प्रश्न किया, 'डिक्टेटर का अन्त कहाँ होगा? विजय से

होगा या पराजय से? (28-10-37 प्रकाशक : प्रतिभा पागल पार्टी, कलकत्ता पृ. 7-8)।

'उग्र' ने *डिक्टेटर* को 'अन्तर्राष्ट्रीय नाटक' घोषित किया। इसमें कुल आठ अंक हैं। यह पहले अंक 'विश्व-पथ-1918' से शुरू करके तीसरे अंक 'विश्व-पथ-1948' पर ख़त्म किया गया। विश्व-पथ 1918 पर वे चल चुके थे। विश्व-पथ 1938 पर चलने की तैयारी कर रहे थे परन्तु 'विश्व-पथ-1948' पर वे कल्पना के पाँवों चल रहे थे। 'बोलो जनता माता की जय' से नाटक का समापन किया। (पृ. 56) यहाँ नाटक का प्रारम्भ चरितार्थ हो गया। 'उग्र' ने आमुख में कबीर का एक गीत 'का माँगों कुछ थिर न रहाई...हाथ झारिके चला जुआरी' दिया था। उन्होंने केवल 'जनता' को स्थिर और अनन्त मानकर फलागम किया, "जनता पर जनता ही राज करे।" यही उनकी अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा थी। इस नाटक में 'उग्र' ने ग्लोबल बाज़ार, डालर, न्यू वर्ल्ड और अण्डरवर्ल्ड के दृश्य दिखलाए, लिखा गॉड इज़ ग्रेट, बट डालर इज़ आलमाइटी। उन्होंने 'फ़ेस वैल्यू' का प्रतिमानीकरण 'मार्केट वैल्यू' द्वारा किया।

डिक्टेटर में 'उग्र' ने पूँजीवाद और साम्यवाद के बीच चलनेवाले विचारधारात्मक द्वन्द्व का चित्रण ऐतिहासिक धरातल पर किया था। पूँजीवाद के प्रतिनिधि इंग्लैण्ड के 'जान बुल' और अमेरिका के 'अंकिल साम' और कार्ल मार्क्स का प्रतिनिधि था 'मोशिये विप्लव'। विप्लव एलान करता है, "आज तक दुनिया में मुट्ठी भर लोग करोड़ों आदमियों पर हुकूमत करते आए हैं,...'अब ऐसा न होगा।" (पृ. 15-16)। भूमिका में 'उग्र' ने लिखा था, "वैसे तो रूस में भी डिक्टेटर है, मगर इस नाटक का डिक्टेटर फ़ासीस्ट ब्राण्डवाला है।" (पृ. 7)

डिक्टेटर में 'उग्र' ने प्रथम विश्वयुद्ध में लाखों लोगों के विनाश पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने युद्ध हीन संसार की कल्पना की। 'लीग ऑफ़ नेशन्स' को 'लीग ऑफ़ फ़ैशन' (पृ. 36) कहा क्योंकि इसकी भी भूमिका डिक्टेटर के हाथ में ही क़ैद हो गई थी। डिक्टेटर का कहना था, "विश्व की सम्पत्तियों, राज्यों,...सैनिक-सिपाहियों, संस्थाओं के प्राण-सूत्र मैं अपनी मुट्ठी में रखूँगा।" (पृ. 44) 'उग्र' ने दूसरे विश्वयुद्ध की सम्भावना व्यक्त करते हुए लिखा, "सज्जनो! महायुद्ध होगा, ज़ल्दी ही होगा और डिक्टेटर के कारण होगा।" (पृ. 48) ऐसे वातावरण में उन्होंने 'विश्वशान्ति' को 'मीठा लब्ज़' मात्र कहा। (पृ. 51)

डिक्टेटर 'उग्र' का विचारधारात्मक और भविष्य-दृष्टि का परिचय देनेवाला नाटक था। आनेवाले मिलेनियम के तमाम सवाल इसमें उभरे हुए हैं, मसलन 'विश्व-बाज़ार' पर कब्ज़ा करने, हथियारों की होड़ लगाने, दूसरों को अधिकारहीन करने और राष्ट्रसंघ पर एकाधिकार जमाने की प्रवृत्तियाँ।

'उग्र' की चौथी नाटकृति *गंगा का बेटा* (1940) में भी युद्ध के विरुद्ध नई मानवता की खोज़ की गई है। यह एकमात्र नाटक है, जो पुराण-कथा के आधार पर लिखा गया हैं। कुछ ऐतिहासिक पात्र भी है जैसे शल्वनरेश ज्वालादत्त आदि। *आवारा* (1942) 'उग्र' का पाँचवाँ नाटक है। इसकी रचना उनके घनिष्ठ मित्र 'श्री हृदय के

लिए 'श्रद्धांजलि-सुमन' के रूप में हुई थी। इसकी 'भूमिका और भपकी' में 'उग्र' ने इसे 'अद्‌भुत आधुनिक सामाजिक नाटक' घोषित किया। उन्होंने अपने समय की छद्म सुधारवादी नारों की अवहेलना करते हुए लिखा, "तुम्हारा यह सुधार-सुधार नहीं ढोंग है—सभ्यता, सभ्यता नहीं नक़ल है—आदमी, आदमी का दोस्त नहीं जानी दुश्मन है।" (अंक 2 दृश्य 6 पृ. 106)। उन्होंने अपना छठा नाटक 'अन्नदाता माधव महाराजा महान' (1945) ग्वालियर के राजा 'माधव महाराज' की प्रशंसा में लिखा था। इसमें राजदरबारों की रीति नीति का यथार्थ चित्र उभरा गया है।

'उग्र' का अन्तिम नाटक *नई पीढ़ी* (1949) उपलब्ध नहीं है। इसे उन्होंने 'राजनीतिक नाटक' घोषित किया था। 'मतवाला' के प्रधान सम्पादक के रूप में विज्ञापन करते हुए (मतवाला; 26 जनवरी, 1949 पृ. 1) उन्होंने लिखा, "प्रेस में चला गया, प्रतियाँ कम छपेंगी", परन्तु यह नहीं पता चल सका कि यह छप सका या नहीं।

'उग्र' ने अपने सभी नाटकों में प्रायः वे ही समस्याएँ प्रस्तुत की हैं, जो उनके कहानियों-उपन्यासों में उठाई गई हैं। भाषाई संरचना में वे हमेशा 'जन' (सुबोधता) के साथ रहते थे। पाठक और भाषा के बीच कोई दीवार नहीं। सभी नाटक रंग-दृष्टि के अनुकूल हैं।

एकांकी और प्रहसन

'मतवाला-मण्डल' में रहते हुए 'उग्र' ने कुछ अपने नाम से और कुछ छद्म नामों से प्रहसनों की रचना की। परन्तु इन्होंने अपना पहला एकांकी 'लाल क्रान्ति के पंजे में' राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में लिखा था। इसका प्रकाशन 'स्वदेश' (गोरखपुर) के 'विजया अंक' (5 अक्टूबर, 1924) में हुआ था और क्रान्तिकारी उग्रता के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया और फिर 'उग्र' जेल भेज दिए गए थे।

जेल से आने के बाद 'उग्र' प्रहसन लिखने लगे। 'चार बेचारे' (बेचारा सम्पादक, बेचारा अध्यापक, बेचारा सुधारक, बेचारा प्रचारक) 'मतवाला' के भिन्न-भिन्न अंकों में प्रकाशित हुए। उदाहरणस्वरूप 'होलिकांक' (23 मार्च 1929) में 'चार बेचारे' के दो अन्तिम 'बेचारे' (सुधारक और प्रचारक) छपे। 'मतवाला' में उन्होंने 'ढिंढोरानन्द स्वामी' छद्म नाम से प्रहसन लिखना शुरू किया था। (मतवाला : 21 1924 पृ. 8), परन्तु बाद में अपना नाम देने लगे।

'उग्र' की कृति *इन्द्रधनुष* (1930) सात रंगों का संकलन है। इसका पहला रंग ललित निबन्ध (रुपया और बुढ़ापा), दूसरा रंग एकांकी नाटक (अफ़ज़ल बध), तीसरा, पाँचवाँ और छठा कहानी (सोसाइटी ऑफ़ डेविल्स, कुमुदिनी और खोज) चौथा रंग प्रहसन (उज़बक) और सातवाँ रंग गीति-एकांकी (सीता-हरण) है।

'अफ़ज़ल बध' राष्ट्रीयता प्रधान ऐतिहासिक एकांकी है। महाराजा शिवाजी की हिन्दू मानसिकता को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में ढाला गया है।

'उज़बक' में 'उग्र' ने हास्य के बहाने 'निराला' के विरोधियों के हाँ में हाँ मिलाया था। वे नाम तथा छद्म नाम दोनों शैलियों में निराला का विरोध किया करते थे। (सन्दर्भ के लिए 'निराला का पत्र पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को —निराला की साहित्य साधना, तीन पत्र, संख्या 51 पृ. 257) उज़बक में भी लिखा गया, "तुम क्या हो? *ख़ाली रबड़-छन्द के लेखक हो, साहित्य जानते खाक, मारते झख हो*" (*इन्द्रधनुष*, पृ. 120); "बाह जी अच्छे कवि हो, काँच हो बनते रवि (?) हों रबर को यों न बढ़ाओ नाश होगा, रुक जाओ (वही पृ. 122)। निराला का पक्षधर होने के कारण महादेव प्रसाद सेठ पर भी व्यंग्य किया, 'उज़बक भी घोर-महा-पण्डित है, पद-सम्पादकीय से मण्डित है। कवि, समालोचक है, नीरस है, रोचक है, (वही पृ. 224)

'उग्र' ने 'खोज' (लोफ़र-लीला) में भी निराला की छायावादी कविताओं का विरोध किया। उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की व्यंग्य-कविता 'पाखण्ड प्रतिषेध' (सुधा, फ़रवरी, 1928 पृ. 60) के पक्ष में गवाही देते हुए लिखा, 'आज के छायावादी कवियों को यह नहीं मालूम कि, महाकवि लोफ़र ने केवल 'छायावाद' ही नहीं 'कायावाद' और 'मायावाद' की भी सृष्टि की है। (*इन्द्रधनुष*, पृ. 173)

अगर ग़ौर किया जाए तो 'उग्र' का गीति-नाट्य (एकांकी) 'सीताहरण' भी निराला के 'गीति-नाट्य' (*निराला-रचनावली*, पृ. 38) के रचना-शिल्प में लिखा गया था। वैसा ही ध्वनि-प्रवाह, लय-विन्यास, स्वराघात और शब्द-संयोजन। मिसाल के तौर पर—'छल था! छल! मृग वह सोने का नहीं था—मृगजल था!' (*इन्द्रधनुष*, पृ. 183)। निराला ने 'पंचवटी-प्रसंग' की कविताओं में तुकयोजना नहीं की थी परन्तु 'सीता-हरण' में 'उग्र' तुक-मोह से मुक्त नहीं हो सके थे। 'सीता-हरण' में 'पंचवटी-प्रसंग' की तरह न दार्शनिक चिन्तन था, न ही वैचारिक ऊँचाई। फिर भी 'सीता-हरण' की संरचना-चेतना कोई निर्बल-प्रसंग नहीं थी। इसमें 'उग्र' की काव्य प्रतिभा परिपक्व कवि के रूप में रूपायित हुई थी।

कहना न होगा कि 'उग्र' का *इन्द्रधनुष* अपने चटक सात रंगों के कारण बेहद प्रशंसित हुआ था। शिवपूजन सहाय ने 'उग्र' की रचनात्मक क्षमता की प्रशंसा करते हुए लिखा था, "भैया 'उग्र' की लेखनी में कितनी जोशे जवानी है, कितनी चुलबुलाहट है, कितनी लचक और धड़क है, यह वही परख सकेगा, जो उनकी जानदार शैलियों की बारीकियों और खूबियों के मर्म तक पैठकर कोई दिल को गुदगुदाने वाली चीज टटोलेगा। ऐसी दिल की सफाई, ऐसी पक्की धुन, ऐसी मौज की लहर बहुत ही कम हिन्दी लेखकों में देखने को मिलती है।" (*इन्द्रधनुष*, परिशिष्ट पृ. 4-5)

7

अन्य विधाएँ

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के युग में साहित्य और पत्रकारिता की शायद ही कोई ऐसी विधा रही हो, जिसमें उन्होंने रचना न की हो। निबन्ध, संस्मरण, आत्मकथा, फ़ीचर, अग्रलेख, व्यंग्यलेख, आलोचना, स्केच, भूमिका, पत्र-लेखन और टीका-साहित्य—सभी में 'उग्र' ने अपने सृजन-व्यक्ति को नया-नया अन्दाज़ दिया।

'उग्र' ने आत्मकथा-लेखन में भी व्यंग्य शैली, नग्न यथार्थ और आक्रामक तेवर को ही महत्त्व दिया था। अपने जीवन के गोपन-प्रसंगों को पाठकों के सामने रख देने में उन्होंने कहीं भी हीनता का अनुभव नहीं किया, परन्तु यह सब करते हुए उनके अहम् का पारा ज़रा भी नीचे नहीं उतरता। हालाँकि उनकी आत्मकथा-पुस्तक *अपनी ख़बर* उनके इक्कीस वर्षों के शुरुआती जीवन की घटनाओं के आधार पर लिखी गई है, परन्तु लिखते समय उम्र थी 60 वर्ष, इसलिए उसमें उनका एक समूचा व्यक्तित्व झाँकता हुआ दिखाई पड़ता है। यद्यपि *अपनी ख़बर* में कुछ तथ्यात्मक भूलें भी हो गई हैं, लेकिन इसका कारण असत्य-कथन का चातुर्य नहीं, बल्कि उनके अव्यवस्थित मस्तिष्क की विवशताएँ हो सकती हैं।

अपनी ख़बर 'उग्र' के जीवन की सपाट कहानी मात्र नहीं है, बल्कि उसमें परतन्त्र भारत की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों की रंगीन फ़ोटोग्राफी भी है। इससे तद्‌युगीन साहित्य और पत्रकारिता पर भी प्रकाश पड़ा है। *अपनी ख़बर* को पढ़ते हुए इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि इसका कड़वा यथार्थ आग्रह शील पाठकों को तिलमिला भी सकता है, मसलन माननीय पं. कमलापति त्रिपाठी का अध्याय। (*अपनी ख़बर*, पृ. 118 से 123 तक)

'उग्र' की आत्मकथा—अपनी ख़बर कहीं-कहीं 'परकथा' यानी जीवन-साहित्य जैसी हो गई है। हालाँकि सम्बद्ध परकथाओं के बिना 'आत्मकथा' नहीं लिखी जा सकती परन्तु दोनों में आनुपातिक प्रक्रिया का ध्यान देना ज़रूरी हो जाता है। *अपनी ख़बर* के 'बच्चा महाराज' (पृ. 80 से 89 तक) में 'आत्मकथा' अस्तित्वहीन हो गई है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'बच्चा महाराज' उग्रयुगीन ऐसे कैरेक्टर थे, जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष 'उग्र-पीढ़ी' को प्रभावित करनेवाले थे। इसलिए इसे आत्मकथा का परिवेश मात्र कहा जा सकता है, न कि 'आत्मकथा'।

'उग्र' की पुस्तक *व्यक्तिगत* (लखनऊ, 1954) *अपनी ख़बर* से छः वर्ष पूर्व लिखी गई थी। इसमें कुल तेरह 'स्केच' हैं, जिनमें व्यक्ति, विचार-स्थिति, स्थान और काल का व्याख्या परक विवरण है। इन्हीं के साथ आत्मकथा का सूत्र भी बना हुआ है। इनकी छवियाँ-व्यंग्य, यथार्थ तथा आशंसा के मेल से पाठकों को आकृष्ट करनेवाली हैं।

अपनी ख़बर और *व्यक्तिगत* देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास *चन्द्रकान्ता* की तरह पाठधर्मी हैं। शोख़ी और रवानी, गुदगुदी पैदा करने की क्षमता और अबाध प्रवहमान भाषा और शैली दोनों में।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' निबन्ध-लेखन में लालित्य, सौन्दर्य-निष्ठा तथा आत्मप्रक्षेपण और विचार-गांभीर्य भरपूर बनाए रखने के पक्षधर थे। इनके निबन्धों में भाषा की महिमा अन्य विधाओं से अलग है। हालाँकि इनके ज़्यादातर निबन्ध भाव-प्रधानता और काव्य-धर्मिता से लबरेज़ हैं, परन्तु तद्‌युगीन विचार-धर्म से वे अछूते नहीं है। रुपया, बुढ़ापा, ताण्डव और दर्ज़न भर से अधिक व्यक्तिव्यंजक निबन्ध उन्होंने लिखे, जो मनुष्य की शाश्वत वृत्तियों के अभिलेख हैं।

निबन्ध-लेखन के साथ ही 'उग्र' ने लेख, व्यंग्य-लेख, फ़ीचर, रिपोर्ताज़ और अग्रलेख लिखे। उनके विशिष्ट लेखों में 'मेरा रोना' (मतवाला, 8 अगस्त 1927), व्यंग्य लेखों में "यह कौन-सा साहित्य है—सत्यम्? शिवम्? सुन्दरम्?" (मतवाला, 16 दिसम्बर, 1928), अग्रलेखों में 'देश के सपूत फिर भी अछूत' (मतवाला, 14 फरवरी, 1925), फ़ीचरों में 'एक साल की तपस्या' (मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति-19 निजी संग्रह, पृ. 41) विशेष पठनीय हैं। सभी में सूत्र, वृत्ति, भाष्य, समीक्षा और कवि-धर्म का सामंजस्य मिलता है।

'उग्र' के शताधिक सम्पादकीय, संस्मरण, लेख और फ़ीचर आदि अभी तक असंकलित पड़े हैं। मिसाल के तौर पर एक असंकलित निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं, "महाकाल नाच रहे हैं। सुनो वो बे—ख़ुदों! देखो हे दीवानों! कान खोलो, आँख खोलो, होश में आओ। गया—तेज़-उड़ा जा रहा है वह ज़माना, जिसमें सुना करते तुम ऐशो ईशरत का तराना! सुख-विलास, धन का पागलपन, सब पर मर्मर पद, खर्पर कर प्रलयंकर महाकाल नाच रहे हैं!"

डमरू उनका बजता है, रव भैरव! डिम् डिम् डम् बाँम् बाँम्!! सुन्दरी वसुन्धरा की छोहमयी छाती फटती है, फूटता है धुआँ—हो हो! हा हा ! लन्दन जलता है—जलता है देश जर्मनों का! राशि-राशि-राशि पूँजीपतियों की धनराशि—तिनके-सी, कूड़े-सी जलती है (और मुझे आती है हँसी) दुधमुख बालक, कमलमुखी बालिकाएँ बधुएँ, बहनें, माताएँ—रूप की जीवन भरी गंगाएँ—जलती हैं, बलती हैं—बात मानो, जलती हैं गजबीलें गोलों से! मृत्यु-सुन्दरी के आसमानी खिलवाड़ में उड़ाए हुए ज़हरीले, आग भरे ओलों से! और तुम देखते हो (बाँधे हुए बाँकी पाग, ओठों में

भरे राग, बाग़-बाग़ मन) मीनाबाज़ार! डमरू उनका बजता है—रव-भैरव...। ('दोज़ख़ में डाल दो कोई लेकर बिहिस्तों को (मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति-16) निजी संग्रह, पृ. 59)

'उग्र' ने व्यंग्यों का सन्दर्भ उठाते हुए तमाम 'गप्प', 'सूक्तियाँ' और 'प्रश्नोत्तर' लिखे। सबमें विधागत नई दृष्टि थी। वे साहित्य की नई-नई विधाएँ रचने के कुशल शिल्पी थे। वे 'आशु कवि का इकलौता' बनकर प्रश्न करते थे और स्वयं उनका उत्तर देते थे। यहाँ एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा—

प्रश्न—अंग्रेज़ी राज्य का सर्वोत्तम फल क्या है?
उत्तर—आवश्यकताओं की असीम वृद्धि।
प्रश्न—मुसलमानी राज्य का सर्वोत्तम फल?
उत्तर—ब्रजभाषा की कविताओं की उन्नति।
प्रश्न—महात्मा गाँधी का जीवन-व्रत?
उत्तर—चुटिया और दाढ़ी का गठबन्धन।
प्रश्न—सेठ जी रोज़ क्या जपते हैं?
उत्तर—जिसका लेना उसका न देना।

'उग्र' ने 'मतवाला' के चण्डूख़ानों में गप्पों की भरमार लगा दी। ये गप्प भी थे—सच भी थे, हास्य भी थे, व्यंग्य भी थे और लोकधर्म भी थे—राजधर्म भी थे। इन गप्पों में सामाजिक यथार्थ के चित्र उभरते थे, परन्तु विलोम-शैली में। 'गप' द्वारा साहित्य तथा पत्रकारिता के तमाम नए मुद्दे उभर कर सामने आते थे। एक 'गप' (गल्प) द्वारा 'उग्र' के सृजन-वैविध्य को आसानी से समझा जा सकता है—'कानपुर' 'प्रभा' के प्राणनाथ 'नवीन जी' की राय है कि भारतीय भेष-भूषावाली स्त्री से शादी करना बड़ी भारी बेवक़ूफ़ी है। इसलिए वे इंग्लैण्ड जानेवाले हैं। वे अक्सर कहा करते हैं कि हिन्दुस्तानी 'प्रभा' पर विलायती 'प्रभा' ख़ूब खिल उठेगी।' (मतवाला, 26 जनवरी, 1925)

हालाँकि 'उग्र' ने व्यवस्थित आलोचनाएँ नहीं लिखीं, परन्तु उनकी फुटकल आलोचनाएँ भी कम तेवरदार नहीं हैं। उनके जो भी आलोचना-लेख मिलते हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि ज़्यादातर समीक्षा-लेख व्यंग्य-प्रधान हैं। इस प्रकार की आलोचनाओं में उन्होंने कृतिकार, कृति और विधा—तीनों पर कुछ-न-कुछ लिखा।

अगर ग़ौर से देखा जाए, तो तद्‌युगीन आलोचकों में 'उग्र' का कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं था। मसलन, उनका एक समीक्षा-लेख 'तुलसीदास' प्रकाशित हुआ। ए. पी. शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ में। (सन् 1951 पृ. 69-71)। इसमें भी वही व्यंग्य दृष्टि, जो 'मतवाला', 'विक्रम' और 'वीणा' जैसी पत्रिकाओं की पुस्तक-समीक्षाओं में उभरा करती थी। उदाहरण के लिए दो-तीन वाक्यों का जायजा लिया जा सकता

है—"तुलसीदास का प्रचार होगा तो महँगे एटम बमों, हवाई जहाज़ों, युद्धपोतों और तोपों के (अमेरिका और रूस दोनों के) संग्रह व्यर्थ चले जाएँगे। (पृ. 69) "कर्म में दम्भ से बचने के लिए ही तुलसीदास 'श्री रघुनाथ की कृपा' की दुहाई देते हैं, न कि अकर्मण्य बनने के लिए।" (पृ. 70)—"तुलसीदास के राम कम्युनिस्टिक कमनीयता में किसी भी कम्युनिस्ट से क़दमों नहीं, कोसों आगे हैं।" (पृ. 71)

उक्त पूरे समीक्षा-लेख में 'उग्र' ने अपनी वक्र-व्यंग्य शैली में तुलसीदास की स्थापनाओं को साम्यवादी विचारधारा से श्रेष्ठतर सिद्ध किया था। आलोचकीय दृष्टि से समीक्षा-लेख (तुलसीदास) का कोई ख़ास महत्त्व न होते हुए भी इससे एक तथ्य यह उभरता है कि सम्भवतः भारतीय स्वतन्त्रता के बाद 'उग्र' का कम्युनिस्ट विचारधारा से मोहभंग हो गया था। इसमें उन्होंने लिखा था 'तुलसीदास का प्रचार होने से कम्युनिस्ट मतवालों को धक्का लगेगा कि मैं तुलसीदास को कम्युनिस्टवाद से उग्रतर मानता हूँ। कम्युनिस्ट अर्थवादी, तुलसीदास परमार्थवादी। कम्युनिस्ट को काम चाहिए, दाम चाहिए, रोटी चाहिए, बोटी चाहिए; उसे दुनिया के सभी सुख चाहिए जिन्हें तुलसीदास माया-मय और मिथ्या मानते हैं। कम्युनिस्ट को प्रोपगण्डा चाहिए, डण्डा चाहिए, प्रतिपक्ष को मार-मारकर ठण्डा या कण्डा कर देने के लिए, पर तुलसीदास का 'मनुष्य' शुद्ध हृदय से चाहता है कि—"कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो"—(पूरा पद दिया)।

'उग्र' ने पुस्तक-समीक्षाएँ अधिक लिखीं। पुस्तक-समीक्षा का दायित्व उन्हें तब सँभालना पड़ा, जब 'निराला' 'मतवाला' से विमुख हो गए थे। 'श्रीमान गरगज सिंह वर्मा' के छद्म नाम से 'निराला' द्वारा 'मतवाला' में लिखी पुस्तक-समीक्षाओं से हिन्दी-साहित्य में तूफ़ान उठ खड़ा हो जाता था। 'निराला' द्वारा लिखे जानेवाले 'मतवाला' के दोनों स्तम्भ—'चाबुक' और 'कसौटी' काफ़ी लोकप्रिय थे। इसलिए 'निराला' के बाद यह चुनौती 'उग्र' ने स्वीकार की थी। उन्होंने 'गरगज सिंह वर्मा' के वज़न पर छद्म नाम अपनाया—'श्रीमान् नाहर सिंह'। 16 अगस्त, 1924 के बाद से दोनों स्तम्भ बन्द थे। 'उग्र' ने इसकी शुरुआत की 25 अक्टूबर, 1924 से और 'कसौटी' में रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता-कौमुदी, भाग-3' की समीक्षा की। 'उग्र' में 'निराला' का समीक्षा-दर्शन अनुपस्थित हो गया। पूरी समीक्षा में कवियों (संस्कृत) के क्रम और महत्त्वपूर्ण संस्कृत कवियों के छूट जाने की चर्चा हुई। प्रूफ़ की ग़लतियों का लम्बा ब्यौरा दिया गया। दृष्टि नदारद थी। इसी प्रकार 'चाबुक' में 'श्री शारदा' (त्रैमासिक) की समीक्षा भी सतही थी। फलतः 'मतवाला' के दोनों स्तम्भ अस्त-व्यस्त हो गए। 3 जनवरी, 1925 को 'कसौटी' का फिर दर्शन हुआ और लेखक बने नन्द कुमार देव शर्मा और बाद में (21 फ़रवरी, 1925) रामशंकर त्रिपाठी।

सन् 1942 में जब 'उग्र' 'विक्रम' (मासिक-उज्जैन) के सम्पादक बने तब उन्होंने कुछ अच्छी पुस्तक-समीक्षाएँ लिखीं। उनके द्वारा लिखे सम्पादकीय अग्रलेख

भी समीक्षाधर्मी जानकारियों से भरे हुए थे। पुस्तक-समीक्षा में पुनः रामनरेश त्रिपाठी और उनकी पुस्तक *तुलसीदास और उनकी कविता*। इस बार प्रशंसात्मक समीक्षा। (अगस्त, 1942)। उन्होंने 'विक्रम' के कुल पाँच अंकों का सम्पादन किया। (अप्रैल 1942 से सितम्बर, 1942 तक)। इन सभी अंकों में 'विन्दु विन्दु विचार' शीर्षक से लिखे सम्पादकीय लेख सामयिक समस्याओं से सम्बद्ध थे।

'उग्र' ने 'हिन्दी-पञ्च' (पाक्षिक, 1956) और 'उग्र' (साप्ताहिक, 1963) के प्रकाशन और सम्पादन का भी दायित्व सँभाला। ये पत्र अल्पजीवी बने। इनमें उनकी व्यंग्य शैली का अच्छा निदर्शन हुआ। 'हिन्दी-पञ्च' का प्रवेशांक 'मतवाला' के सम्पादक महादेव प्रसाद सेठ की स्मृति में निकला। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें दर्ज़न भर लेखकों, मसलन बनारसीदास चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, मन्मथनाथ गुप्त, ज़हूरबख़्श, किशोरीदास वाजपेयी, गुलाब राय, विजयदेवनारायण साही और जी.पी. श्रीवास्तव आदि के पत्र-इटरव्यू प्रकाशित किए गए। (जनवरी, 1956 के प्रवेशांक से लेकर 29 फ़रवरी, 1956 तक कुल पाँच अंक)।

'उग्र' ने 'हिन्दी-पञ्च' के दो अंकों में 'मतवाला' के तर्ज पर 'कसौटी' स्तम्भ प्रकाशित किया, परन्तु इनमें 'मतवाले-निरालेपन' का पूरी तरह अभाव था। सच तो यह है कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आलोचक नहीं, आक्रामक व्यंग्यकार थे।

हास्य-व्यंग्य-लेखन

अज्ञात नहीं है कि भारतेन्दु-मण्डल-युग के बाद द्विवेदी-युग में व्यंग्य-लेखन की धारा काफ़ी क्षीण पड़ गई थी। लेखन की सारी विधाएँ देशप्रेम, पुराणवाद, विज्ञान, साहित्य-संगीत-कला, इतिहास-पुरातत्त्व, राजनीति, अर्थशास्त्र एवं ज्ञान के विविध क्षेत्रों में केन्द्रित थीं। वर्णन तथा विवेचन में आदर्श तथा गम्भीरता को स्थान दिया गया। साथ ही अंग्रेज़ प्रभुओं की प्रशंसाएँ भी हुईं। हास्य और व्यंग्य के सभी मार्ग आदर्शवादी अतीत और वर्तमान की ओर मुड़े। भारतेन्दुयुगीन व्यंग्य-धारा के तेवर समाप्त-से थे। ऐसे ही माहौल में लेखक 'उग्र' का आगमन हुआ।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जब लेखन-क्षेत्र में उतरे, तब बालमुकुन्द गुप्त का व्यंग्य-युग समाप्त हो गया था। 'उग्र' ने बीते हुए व्यंग्य-युग को पुनः याद किया, कारण था बचपन से ही जीवन का सूक्ष्म व्यंग्यानुभव। उनकी लेखकीय मानसिकता की रचना मूलतः तीन तत्त्वों से हुई थी—व्यंग्य, विद्रोह और देशप्रेम। ये ही तीनों उनके सृजन के सर्वव्यापी तत्त्व थे। इसलिए उनकी सभी विधाओं में इन्हीं तत्त्वों का समयोग था।

'उग्र' के समकालीन व्यंग्य-लेखक थे नवजादिकलाल श्रीवास्तव, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानन्द और जी.पी. श्रीवास्तव। परन्तु व्यंग्य-युग को

पुनर्जीवित करनेवाले मूलतः 'उग्र' थे। इन्होंने सभी विधाओं में अपने नाम अथवा छद्म नाम से रचनाएँ कीं। सब में चुभनेवाली, तिलमिलानेवाली और आँख खोलनेवाली शैली थी। उन्होंने ऐसे व्यंग्य-बाण छोड़े, जो कलेजे पार होकर ही रहते थे। उन्होंने देश, काल, व्यक्ति, प्रवृत्ति और परिस्थिति सब पर व्यंग्य-निक्षेप किया। इस युग का कोई भी व्यंग्यकार 'उग्र' जैसा निर्भय निशानेबाज़ नहीं था।

''उग्र' का व्यंग्य-लेखन 'आज' (दैनिक, बनारस) से शुरू हुआ। वे 'अष्टावक्र' उपनाम से 'ऊटपटाँग' शीर्षक-स्तम्भ में हास्य और व्यंग्य की फुलझड़ियाँ छोड़ा करते थे। (*अपनी ख़बर*, पृ. 110) यह नियमित स्तम्भ नहीं था। 'उग्र' ने इस स्तम्भ में 'स्वदेश' (गोरखपुर) के सम्पादन (अक्टूबर, 1924) तक लगभग दो दर्ज़न व्यंग्य-लेख और व्यंग्य-कविताएँ लिखीं। परन्तु इनमें व्यंग्य कम हास्य अधिक था। 14 जून, 1923 से 22 मार्च, 1924 तक के ये व्यंग्य उनके प्रयोग-काल के व्यंग्य थे।

हालाँकि जेल से आने के बाद वे मतवाला-मण्डल में सम्मिलित हुए, परन्तु कलकत्ता से ही 'ऊटपटाँग' के लिए व्यंग्य भेजते थे। 16 मार्च 1926 से लेकर सितम्बर, 1926 के अन्तिम दिनों तक क़रीब एक दर्ज़न व्यंग्य लिखे। यह अवधि उनके व्यंग्य-लेखन की उत्कर्ष-अवधि थी।

'मतवाला' में 'उग्र' ने व्यंग्य को आधार बनाकर सैकड़ों लेख, कविताएँ, फ़ीचर, चुटकुले, संवाद, नामकरण, आलोचना, गप्प और सूक्तियाँ लिखे। 'अष्टावक्र' को बरक़रार रखते हुए अन्य छद्म नामों का नया मण्डल तैयार कर दिया। मतवाला प्रारंभ से ही व्यंग्य और छद्म नाम के लिए प्रसिद्ध था। 'उग्र' के सम्मिलित होने के बाद यह प्रसिद्धि परवान चढ़ गई।

'मतवाला' छोड़ने के बाद भी 'उग्र' 'अष्टावक्र', 'स्वराज्य', 'विक्रम' आदि पत्रिकाओं में व्यंग्य-लेखन करते रहे। स्वतन्त्र विधा के रूप में व्यंग्य-रचना करने के अलावा उन्होंने अपने कथा साहित्य में भी हास्य और व्यंग्य का विनियोजन किया। 'वीणा' में लिखा उनका हास्य-एकांकी 'हवाई हैदराबाद हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' (जुलाई, 1941) अत्यन्त विवाद का कारण बना था।

ग़ालिब-उग्र

अगर व्यंग्य न हो तो डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन सच है कि "निराला की तरह' 'उग्र' ने महादेव प्रसाद सेठ से ग़ालिब-प्रेम की दीक्षा ली थी।" (*निराला की साहित्य-साधना*—1 पृ. 108) 'मतवाला' में आने के पहले 'उग्र' ने ग़ालिब को नहीं पढ़ा था। 'मतवाला' के पुस्तकालय में ही उन्होंने *दीवान-ए-ग़ालिब* देखा। सेठ जी ने उन्हें ग़ालिब की रचनाओं की ओर आकृष्ट किया। सेठ जी फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे, इसलिए उन्होंने एक सुहृद अध्यापक की तरह 'उग्र' को ग़ालिब की शायरी

की विशेषताएँ बतलाईं। पूरा मतवाला-मण्डल ग़ालिब और अकबरमय हो उठा था। 'मण्डल' में अकेले 'उग्र' ग़ालिब के कलाम के अच्छे ग्राहक साबित हुए। 'उर्दू' उन्होंने सुनकर सीखी थी, मतवाला में पढ़कर सीखी, केवल उर्दू ही नहीं फ़ारसी भी। हिन्दी की तरह उर्दू उनकी ज़बान बन गई। वे उर्दू, फ़ारसी और ग़ालिब से भावनात्मक स्तर पर जुड़े। यही कारण था उन्होंने अपने जीवन के परवर्ती काल में *दीवान-ए-ग़ालिब* के कुछ शेरों की हिन्दी टीकाएँ लिखीं।

'उग्र' द्वारा ग़ालिब पर लिखी टीका भावुकता-प्रधान है। मसलन ग़ालिब के एक शेर का 'मिसरा' है 'बे-दरो-दीवार-सा इक घर बनाना चाहिए' जिसकी टीका करते हुए 'उग्र' ने लिखा, "द्वार-दीवार-विरहित एक निकेत बनाना चाहिए—बिलकुल मुक्त।"

अस्पष्ट नहीं है कि ग़ालिब द्वारा कहे गए 'मिसरा' में जो असर था, जो रवानी थी, जो फ़साहत और बलाग़त का कमाल था वह 'उग्र' की टीका के रूप में नहीं आ सका। 'घर' का निकेत और 'बे-दरो-दीवार' का 'द्वार-दीवार-विरहित' कर देने से ग़ज़ल की सारी फ़नकारी ग़ायब हो गई। सलासत समाप्त। ज़ाहिर है कि 'उग्र' टीका करने में भी अपना कवि-रूप नहीं छोड़ सके थे। सच तो यह है कि 'उग्र' की प्रकृति का कोई साहित्यकार अच्छा टीकाकार नहीं बन सकता है।

पत्र-लेखन

पत्र-लेखक के रूप में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम बनारसीदास चतुर्वेदी की कोटि में गिनाया जा सकता है। वे पत्रों के उत्तर तत्काल देते थे, पूरी तफ़सील के साथ। छोटे पत्रों के उत्तर देने में भी, वे विस्तार को ही महत्त्व देते थे।

'उग्र' के पत्रों में व्यंग्य और आक्रामकता दोनों की प्रधानता थी। उनके सभी पत्र कड़वे यथार्थ की खुली चिट्ठियाँ होते थे। उन्होंने व्यक्तिगत पत्र लिखते हुए भी सार्वजनिकता को ही अधिक महत्त्व दिया। पत्रों के माध्यम से छद्म आचरणों, दोहरे चरित्रों और साहित्यिक घपलेबाज़ियों की जमकर ख़बर ली। कुछ पत्र तो समीक्षाधर्मी हो गए हैं। ऐसे पत्र कला और साहित्य की युगीन प्रवृत्तियों के अभिलेख-से हैं। वे अन्याय के खिलाफ अपने पत्रों द्वारा उसी प्रकार संघर्ष करते रहे थे, जिस प्रकार उपन्यासों, कहानियों और लेखों द्वारा।

व्यक्तिगत पत्रों के अलावा 'उग्र' ने सम्पादकों के नाम भी कई-कई पत्र लिखे। ऐसे पत्र कुछ अपने नाम द्वारा और कुछ उपनाम (छद्मनाम) द्वारा लिखे गए। 'आज' 'मतवाला', 'स्वराज' और 'विक्रम' की फ़ाइलों में ये पत्र सुरक्षित हैं। इनमें कृतिकार की संवेदनाएँ बड़ी प्रखर हैं। ऐसे पत्रों को 'उग्र' ने खुली चिट्ठी या चिट्ठा के रूप

में लिखा। मिसाल के तौर पर 'सम्मेलन के अधिकारियों के नाम खुली चिट्ठी' (मतवाला, 29 नवम्बर, 1924, पृ. 284) :

"महोदय गण, देहरादून सम्मेलन के विषय में जो अनेक प्रकार की अफ़वाहें उड़ रही हैं, उन्हें आप लोगों ने भी अवश्य सुना होगा। देहरादून सम्मेलन के अवसर पर प्रतिनिधियों और जनता में महन्त परशुराम के विरुद्ध आन्दोलन होना, अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों एवं हिन्दी-हितैषियों का सम्मेलन से असहयोग करना, पहले लाहौर के 'केसरी' और 'अभ्युदय' 'प्रताप' आदि प्रतिष्ठित पत्रों में सम्मेलन पर गम्भीर टिप्पणियों का प्रकाशित होना, गढ़वाली में पं. नरदेव शास्त्री के नाम खुली चिट्ठी का निकलना, तथा देहरादून के पत्रों में 'सम्मेलनी परशुराम' विषय पर ख़ूब 'तू तू मैं मैं, चलना आदि घटनाएँ आप लोगों से छिपी न होगी अस्तु।"

पत्र काफ़ी लम्बा है। इसमें सम्मेलन में व्यक्ति विशेष के एकाधिकार पर प्रहार किया गया है।

'उग्र' एक ऐसे विवादग्रस्त साहित्यकार थे कि उस युग के प्रायः सभी लेखकों और पत्रकारों ने उनके नाम पत्र लिखे थे। उनके नाम लिखे सभी पत्र अब तक उपलब्ध नहीं हो सके, परन्तु जो उपलब्ध हो सके हैं, उनका संकलन-प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद *फ़ाइल और प्रोफ़ाइल* पुस्तक में किया गया है। इसमें कुल 70 लेखकों-पत्रकारों के पत्र संकलित हुए हैं। 'उग्र' ने जो पत्र लिखे थे, उनका प्रकाशन अभी नहीं हो सका है। अगर उनका भी प्रकाशन हो जाए, तो उनके लेखकीय व्यक्तित्व को और अधिक विस्तार के साथ समझा जा सकता है।

'उग्र' का भोजपुरी, अवधी और ब्रजभाषा-लेखन

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भोजपुरी क्षेत्र में पैदा हुए थे। भोजपुरी क्षेत्र ही उनकी रचनात्मक भूमि था। मतवाला-मण्डल में निराला के साथ रहते हुए उन पर अवधी का भी प्रभाव पड़ा। भोजपुरी में तो इनकी अनेक रचनाएँ—गद्य और पद्य दोनों—मिलती हैं। इन्होंने कई-कई भोजपुरी लोकगीत लिखे जिनमें बिरहा, कजली, लावनी, रेखता, ग़ज़ल, क़व्वाली और लोक-भजन विशेष आकर्षक हैं। अपने नाटकों और उपन्यासों में भी उन्होंने भोजपुरी कविताओं का विनियोजन किया था। इन सभी रचनाओं में भोजपुरी बोली की कोमल संवेदनाएँ निहित हैं। इनमें भोजपुरी जीवन की सहज प्रवृत्तियों का भी अच्छा उभार हुआ है। परन्तु उन्होंने जब 'अवधी' में लेखन किया, तब शुद्ध अवधी नहीं लिख सके। उसमें भोजपुरी बोली की प्रवृत्तियाँ—क्रियापद तथा प्रत्यय—भी उभरती रहीं। न चाहते हुए भी जन्म की घुट्टी में मिली बोली भोजपुरी का रंग चढ़ता गया। इसके लिए एक उदाहरण नाकाफ़ी न होगा—

कहो भैया धोकरी पण्डित! सुनत हयन कि तुम हूँ हमरे पर हँसत रह्यौ! हहहह:

"सुपवा हँसे तो हँसे, चलनियौ हँसे जेमा बहत्तर छेद?" साइत तुमही कहत रह्यौ कि हरखू पाण्डे का—न्यौता बन्दकर दिया जइहे, काहे से कि मलेछन अउर ईसाइन के सुद्धि करत फिरत हयँ।...(रँगरूटों की फ़ौज-मतवाला : 28 फ़रवरी, 1925 पृ. 547)

'उग्र' ने ब्रजभाषा में अनेक कवित्त, सवैया और गीत लिखे। अपने भाई त्रिदंडी के प्रभाव के कारण ब्रजभाषा में समस्या—पूर्तियाँ भी करते थे। उग्र-काल में समस्या—पूर्ति की अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। प्रायः सभी पत्रिकाएँ ब्रजभाषा को ही प्राथमिकता देती थीं। 'उग्र' के जनपद मिर्ज़ापुर से भी समस्या-पूर्ति की एक पत्रिका—'काव्यकला निधि' प्रकाशित होती थी, जिसमें मिर्ज़ापुर के एक दर्ज़न कवि छपते थे। 'उग्र-बन्धुओं' की भी रचनाएँ इसमें छपा करती थीं।

'उग्र' अपने नाटकों और एकांकियों में भी ब्रजभाषा की कविताएँ विन्यस्त करते थे। इस सन्दर्भ में उनके प्रथम नाटक *महात्मा ईसा* से एक ब्रजभाषा-गीत का नमूना द्रष्टव्य है—

प्रियतम छवि लखि वारी गयी मैं....
बारी गयी मैं बलिहारी गयी मैं।
आयो अनुपम पथिक, श्रवण सुनि
दरसन बिकल अटारी गयी मैं
रूप-सुधा-रस-अमर पान कर
हाय! अचानक मारी गयी मैं।....(पृ. 14)

स्पष्ट है कि 'उग्र' भाषाई वैविध्य के समर्थ रचनाकार थे। भाषा-प्रयोग में उन्होंने आम आदमी की सन्निकटता का ध्यान हमेशा दिया। रचना और जनता के बीच विद्यमान साहित्यिक भाषा के अन्तराल को दूर करके ही वे साधारण जनों के साहित्यकार बने थे।

8

उपसंहार

मानवतावादी चिन्तन की बृहद् संहिता

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का कृतित्व विधा और विचार, दोनों धरातलों पर बहु आयामी है। उनके विचार बहुमुखी होते हुए भी केन्द्रीयोन्मुख हैं और उनके केन्द्र में हैं—'मनुष्य'। उनका सारा कृतित्व इसी मनुष्य के आसपास खड़ा मिलता है। इसी 'मनुष्य' की सुरक्षा का संकल्प लेकर उन्होंने हिन्दी-साहित्य में ग्रहीत सारी विधाओं में रचना की। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबन्ध, लेख, अग्रलेख, व्यंग्यलेख, चम्पू, आलोचना, रिपोर्ताज़, यात्रा प्रसंग, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, हास्य-टिप्पणियाँ और पत्र-साहित्य, सभी विधाओं में रचना की। ये सभी विधाएँ देश, जातीय संस्कृति और मनुष्य के सकारात्मक प्रसार के लिए ही जद्दोज़हद करती हैं। मनुष्य के रचनात्मक व्यक्तित्व के यथार्थवादी फैलाव के लिए उन्होंने अनिवार्यता के आधार पर कहीं विरोध का और कहीं स्वीकृति का साहित्य लिखा। न कहीं कुण्ठा, न भय और न ही पलायन।

हालाँकि 'उग्र' ने समय की पीठिका पर खड़ा होकर सभी विधाओं में छलाँग लगाई, अवगाहन भी किया, परन्तु हिन्दी नवजागरण का समूचा चित्र कहानियों और उपन्यासों के पटल पर ही अंकित किया। उनके कथा-लेखन में साहित्य के रूप और साहित्य के उपादान की चरम परिणति मिलती है। वर्जित विषयों पर भी कथा-लेखन करते हुए वे अपने मानवतावादी उद्देश्य से न विचलित होते हैं, न पराङ्मुख। वे अपने लेखन का प्रारम्भ कविता से करते हैं और समाहार उपन्यास से, परन्तु सभी विधाओं में देशभक्ति और मानवतावादी उद्देश्य की समानताएँ हैं। इसलिए 'उग्र' के कृतित्व का उद्देश्यगत अध्ययन करना, विधागत अध्ययन से बेहतर होगा। विधागत वैविध्य उनका माध्यम था, परन्तु उद्देश्यों की परिणति ही उनका साध्य था। मसलन, साम्राज्यवादी शासन से देश की मुक्ति के लिए संघर्ष करना अथवा भारतीय समाज में धार्मिक सद्भाव के लिए रास्तों की खोज करना अथवा छद्म चरित्रों का पर्दाफ़ाश करना उनके उद्देश्य थे, जो उनकी सभी विधाओं में भिन्न-भिन्न शिल्पों और

व्यंजनाओं के साथ मूर्त हुए। अगर वस्तुगत संवेदना के आधार पर 'उग्र' के साहित्य का वर्गीकरण किया जाए, तो उन्हें नीचे लिखे शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

1. देशभक्ति तथा राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन का समग्र चिन्तन
2. भारतीय नवजागरण और समतावादी समाज का रचनात्मक संघर्ष
3. दलितोत्थान—दर्शन
4. नारी की नई मीमांसा
5. धार्मिक सद्भाव की तलाश
6. प्रेम, वासना और सौन्दर्य का विमर्श
7. इतिहास और कथा-लेखन
8. राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का लेखा
9. चरित्रों की बहुकोणीय फ़ोटोग्राफ़ी
10. शिक्षा की राष्ट्रीय अवधारणा
11. हास्य-व्यंग्य-संहिता
12. क्रान्तिधर्मी पत्रकारिता
13. भाषा का लोकतन्त्र
14. शैली—नये रास्ते चली

ऐसे ही समाजधर्मी और भी मुद्दे हो सकते हैं जिन पर 'उग्र' ने अपनी क़लम चलाई। विधा चाहे जो भी हो, उसमें 'उग्र' का राष्ट्रीय व्यक्तित्व उभरकर सामने आया। विधा और व्यक्तित्व का समीकरण बनाने में उन्हें महारत हासिल था। हालाँकि उनके सृजन-कौशल का सम्पूर्ण फैलाव कहानियों और उपन्यासों में हुआ, परन्तु कविता, नाटक, निबन्ध तथा व्यंग्य-लेखन में भी उन्होंने रचनात्मकता की नई परिपाटी स्थापित की।

आज यह कहना असंगत न होगा कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का उपेक्षा-युग अब ख़त्म हो चला है। वे जब तक जीवित थे, अपने साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए तरसते रह गए। साहित्य में कलावाद और आदर्शवाद का राग अलापने वालों ने उनके लेखन का ज़बरदस्त घेराव किया था। शीर्ष आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रशंसित होकर भी वे घेरेबन्दी के षड्यन्त्र को तोड़कर मुक्त नहीं हो सके थे। सन् 1953 तक उन्हें यही कहना पड़ा :

> "अगर सत्य को ज्यों-का-त्यों चित्रित कर देने में कोई कला हो सकती है; तो मेरी इन कहानियों में भी कला है। और यदि नहीं, कला हमेशा शुद्ध सत्य ही नहीं हुआ करती, तो मेरी ये धधकती कहानियाँ कला शून्य हैं। मैं उस कला को लिखना नहीं जानता। मैं उस कला को जानने की चेष्टा भी नहीं करना चाहता।" (कैफ़ीयत, पृ. 'च' *चाकलेट)*

'उग्र' जीवन-पर्यन्त अपने साहित्य की स्वीकृति तथा लेखकीय अस्तित्व के लिए संघर्ष करते रहे थे, विरोधी परिस्थितियों ने उन्हें अव्यवस्थित कर दिया था, फिर भी वे लड़ते रहे, जैसे को तैसा जवाब देते रहे। उनकी मृत्यु के बाद भी हिन्दी के आलोचक उन्हें साहित्यिक स्वीकृति देने से कतराते रहे। सन् 1980 में डा. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित *हिन्दी साहित्य का इतिहास* का दूसरा संस्करण छपा, जिसमें लिखा गया :

> "प्रेमचन्द युग के सबसे अक्खड़ और इसलिए सबसे बदनाम उपन्यासकार हुए बेचन शर्मा 'उग्र'। ...उन्होंने समाज के उस वर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया जिसे दलित या पतित वर्ग कहते हैं; और उसके चित्रण में उन्होंने किसी प्रकार के 'शील' या 'अभिजात शिष्टता' का परिचय नहीं दिया। उनके उपन्यासों में एक ओर सच्चाई अपने नग्न रूप में आयी है, तो दूसरी ओर वह 'परचेबाज़ी' के निकट पहुँच जाती है, जो किसी कृति को कला रूप में परिणत नहीं होने देती। उनकी सपाटबयानी अधकचरे और कम उम्र पाठकों की रुचि को विकृत करने के ख़तरे से भी युक्त है, जिससे उनका सुधारवादी उद्देश्य भी पूरा नहीं हो पाता।" (पृ. 586)

उक्त ग्रन्थ में यह भी लिखा गया, "'उग्र' विशुद्ध समाजद्रोही थे, कला की उन्होंने कभी चिन्ता ही नहीं की, फलतः उनकी कहानियाँ कलात्मक दृष्टि से कभी भी शिखर पर नहीं पहुँच सकीं।" (पृ. 592)

अज्ञात नहीं है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के *हिन्दी साहित्य का इतिहास* के बाद डॉ. नगेन्द्र का 'इतिहास' ही विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है। ऐसी स्थिति में यह समझना कठिन नहीं है कि हिन्दी साहित्य में 'मास्टर' (ज्ञाता) बने लोगों की 'उग्र' के प्रति क्या धारणा हो सकती है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि 20वीं शताब्दी ने 'उग्र' का सही मूल्यांकन नहीं किया। परन्तु शताब्दी के आख़िरी दशक में 'उग्र' प्रासंगिक हो उठे हैं। और आगे इक्कीसवीं शताब्दी में संभवतः वे सबसे अधिक प्रासंगिक स्वीकार किए जाएँगे।

तथाकथित मूल्यवादियों के आलोचकीय प्रहार से 'उग्र' तभी से आहत थे, जब उन्होंने *चाकलेट* और *दिल्ली का दलाल* शीर्षक कथा-किताबें लिखी थीं। 'निराला' की तरह उन्होंने भी हिन्दी-लेखन का क्षेत्र त्याग देने का निश्चय कर लिया था। अपने इस निश्चय के बारे में उन्होंने खुद लिखा था :

> "मेरे विरुद्ध घनघोर घासलेट आन्दोलन चल रहा था। सहृदय नामधारी मुझे पहचानने को तैयार न थे, कुछ मेरी कमियों के कारण, कुछ मेरी विशेषताओं से चौंधियाकर। मैंने सोचा हिन्दी के माथे कोई सेहरा थोड़े बँधा है—तुम नहीं और सही। लिखूँ नहीं तो मैं भूखों मर जाऊँगा, इसे न तो मैंने कभी माना

था, न आज ही मंजूर करता हूँ।" सिनेमा संसार और मैं—(साप्ताहिक हिन्दुस्तान- 27 फ़रवरी, 1955)

'उग्र' का यह कथन मृत्यु के बारह वर्ष पहले का था। अर्थात् अपनी आख़िरी साँस तक इन्हें मानसिक द्वन्द्वों से गुज़रना पड़ा। कुछ ये ही कारण रहे होंगे कि उनकी दर्ज़नों कहानियाँ, लेख, व्यंग्य, कविताएँ, रिपोर्ट आदि संकलित नहीं हो सके। अगर 'उग्र' की सारी असंकलित रचनाएँ संकलित कर दी जाएँ, तो केवल हज़ार पृष्ठों का नया साहित्य ही न प्राप्त होगा, बल्कि तद्युगीन समाज और संस्कृति को समझने में काफ़ी मदद भी मिलेगी।

आज यह भी ज़रूरी है कि इक्कीसवीं सदी के सम्मान के सन्दर्भ में 'उग्र' के साहित्य की प्रासंगिकताओं का पुनर्मूल्यांकन किया जाए, तभी 'उग्र' के शताब्दी-वर्ष (29 दिसम्बर 1999 से 29 दिसम्बर 2000) तक की सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

'उग्र' की प्रकाशित कृतियाँ

कहानी-संकलन

1.	चाकलेट	1924	कलकत्ता
2.	सोसाइटी ऑफ़ डेविल्स (शैतान मंडली)	1924	गाज़ीपुर
3.	चिनगारियाँ (ज़ब्तशुदा)	1925	कलकत्ता
4.	बलात्कार	1927	मिर्ज़ापुर
5.	निर्लज्जा	1927	मिर्ज़ापुर
6.	दोज़ख़ की आग	1929	मिर्ज़ापुर
7.	क्रान्तिकारी कहानियाँ	1939	वाराणसी
8.	गल्पांजलि	1940	शिकोहावाद
9.	रेशमी	1942	लखनऊ
10.	पंजाब की रानी	1943	लखनऊ
11.	सनकी अमीर	1952	लखनऊ
12.	कला का पुरस्कार	1954	दिल्ली
13.	जब सारा आलम सोता है	1955	आगरा
14.	'उग्र' की श्रेष्ठ कहानियाँ	1961	दिल्ली
15.	पोली इमारत	1964	दिल्ली
16.	चित्र-विचित्र	1964	दिल्ली
17.	यह कंचन-सी काया	1964	दिल्ली
18.	काल कोठरी	1964	दिल्ली
19.	ऐसी होली खेलो लाल	1964	दिल्ली
20.	मुक्ता	1964	दिल्ली

उपन्यास

1.	चंद हसीनों के ख़तूत	1924	कलकत्ता
2.	रंग महल	1925	कलकत्ता
3.	दिल्ली का दलाल	1927	कलकत्ता
4.	बुधुआ की बेटी	1928	कलकत्ता
5.	शराबी	1930	बनारस
6.	सरकार तुम्हारी आँखों में	1937	लखनऊ

7.	घंटा	1937	कलकत्ता
8.	गंगाजल	1949	मिर्ज़ापुर
9.	कढ़ी में कोयला	1955	दिल्ली
10.	जी जी जी	1955	दिल्ली
11.	फागुन के दिन चार	1960	दिल्ली
12.	जुहू	1963	दिल्ली
13.	गंगा माता	1972	दिल्ली
14.	सब्ज़बाग़	1979	दिल्ली

नाटक

1.	महात्मा ईसा	1922	काशी
2.	चुम्बन	1937	कलकत्ता
3.	डिक्टेटर	1937	कलकत्ता
4.	गंगा का बेटा	1940	इंदौर
5.	आवारा	1942	उज्जैन
6.	अन्नदाता माधव महाराज महान	1943	उज्जैन
7.	नई पीढ़ी	1949	मिर्ज़ापुर

प्रहसन-एकांकी

1.	लाल क्रान्ति के पंजे में	1924	गोरखपुर
2.	चार बेचारे	1927	मिर्ज़ापुर
3.	उजबक	1928	मिर्ज़ापुर

कविता-संकलन

1.	ध्रुव चरित (खंडकाव्य)	1921	काशी
2.	पारिजातों का बलिदान	1942	उज्जैन
3.	कंचन घट	1955	आगरा

हास्य-व्यंग्य

1.	'उग्र' का हास्य	1939	कलकत्ता

संस्मरण

1.	व्यक्तिगत	1954	लखनऊ

आत्मकथा

1.	अपनी ख़बर	1960	दिल्ली

पत्र-साहित्य

1.	फ़ाइल प्रोफ़ाइल	1966	दिल्ली

टीका

1.	ग़ालिब-उग्र	1966	दिल्ली

विविध

1.	इन्द्रधनुष	1929	मिर्ज़ापुर